प्रकृति परिचय

संकलन/सम्पादन

ब्र. विनोद जैन
ब्र. अनिल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति-परिचय

सकंलन/सम्पादन

ब्र० विनोद कुमार जैन
श्री ऋषभ व्रती आश्रम
पपौराजी, जिला टीकमगढ़
मध्यप्रदेश

ब्र० अनिल कुमार जैन
श्री वर्णी दिग० जैन गुरूकुल,
पिसनहारी,
जबलपुर

प्रकाशक
श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन
बरेला (जबलपुर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति-परिचय

संकलन/सम्पादन
ब्र० विनोद जैन
ब्र० अनिल जैन

प्रथम संस्करण : अक्टूबर १९९८

अर्थ सहयोग : श्री सत्यभूषण जैन
राजेश ट्रेडिंग कम्पनी
पुराना बस स्टैण्ड,
हाँसी जि० हिसार (हरियाणा)

मुद्रक : **बी० जैन पब्लिशर्स (प्रा०) लि०**

मूल्य : रू० २५/-

प्राप्ति : **श्री दिग० साहित्य प्रकाशन**
जैन स्टोर्स, जैन मन्दिर के सामने, बरेला
जबलपुर, (म०प्र०), फोन : ८९४३१.

ब्र० जिनेश जैन
संचालक - श्री दिगम्बर जैन गुरूकुल
पिसनहारी, मठिया, जबलपुर (म०प्र०)

प्रस्तुत सस्करण से प्राप्त राशि आगामी संस्करण के लिए सुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

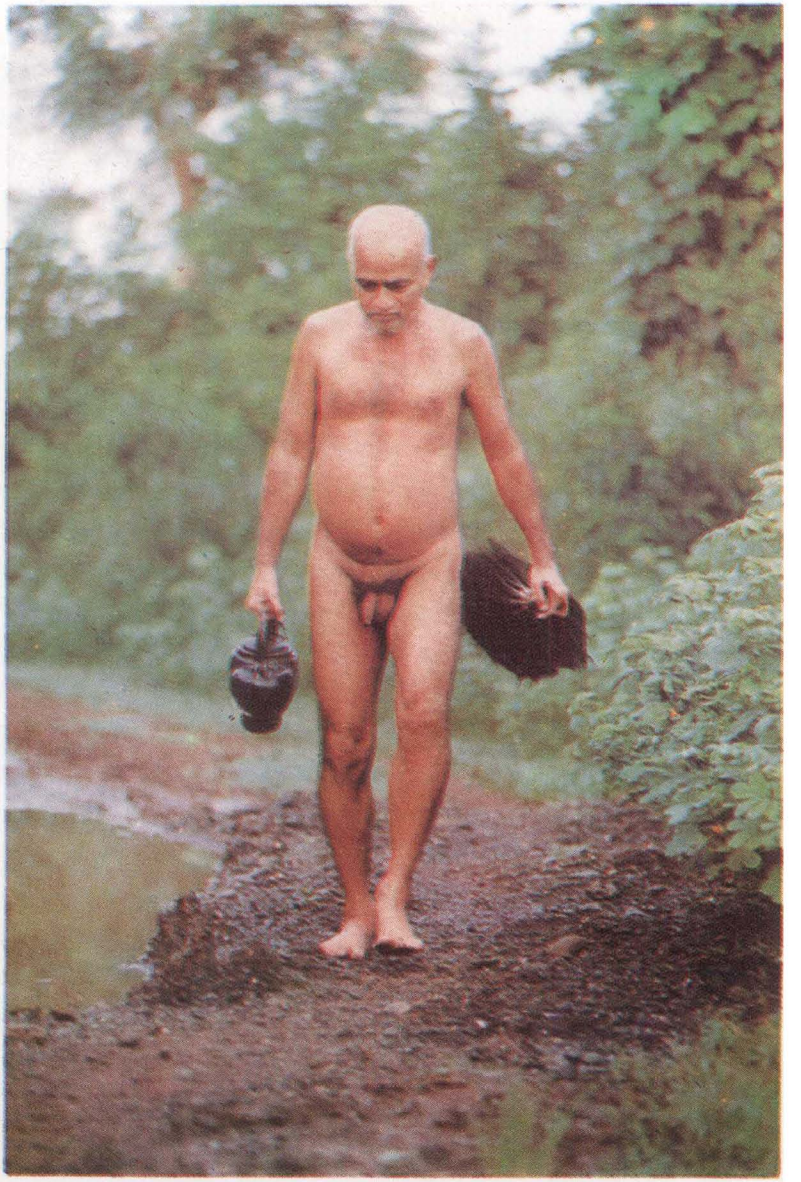

दिगम्बर जैनाचार्य 108 श्री विद्यासागर जी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

एक ही माँ के गर्भ से उत्पन्न दो बालक, समान आहार, एक ही स्थान पर रहने पर भी उनकी शारीरिक और मानसिक योग्ताओं में अन्तर देखा जाता है। एक प्रतिभा-सम्पन्न, कार्यकुशल, व्यवहारकुशल आदि नाना योग्यताओं सहित और दूसरा इन सभी योग्यताओं से रहित देखा जाता है। यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है कि आखिर इस विविधता का जिम्मेदार कौन ?

एक जन्म से ही सुन्दर, बलवान, सम्पूर्ण अङ्गोपाङ्ग सहित दूसरा जन्मांध, कुरूप, शक्तिहीन। इन दोनों में विविधता का कारण क्या ?

क्या ईश्वर कृत यह विविधता है यहीं प्रतिप्रश्न उत्पन्न होता है कि आखिर ईश्वर उन्हें एक सा क्यों नहीं बना देता ? अन्त में विचारवान् मनुष्य का चित्त इस निर्णय पर पहुँचता है कि कोई अदृश्य शक्ति इन जीवधारियों के साथ जुड़ी हुई है जो विभिन्नता उत्पन्न करने में कारण है। इसी शक्ति को जैन मनीषीओं ने 'कर्म' कहा है। कर्म का अर्थ एकमात्र क्रिया ही ग्रहण नहीं कर, उन सूक्ष्म पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करना चाहिए जो कि जीवनधारी के द्वारा की गई मन, वचन और काय की क्रिया के कारण खिंच कर जीव के प्रदेशों के साथ एकक्षेत्रावगाहित हो जाती हैं। यह लोक सूक्ष्म पुद्गल वर्गणाओं से भरा हुआ है। प्राणी के द्वारा जो भी मानसिक, वाचनिक, शारीरिक क्रिया निष्पन्न की जाती है। उसके फलस्वरूप ही वे सूक्ष्म पुद्गल वर्गणायें खिंचकर, जीवप्रदेशों के साथ संलग्न हो जाती है और जिस प्रकार हल्दी और चूना का मिश्रण करने पर तृतीय हो वर्ण की निष्पत्ति होती है। उसी प्रकार उन पुद्गल वर्गणाओं का जीव प्रदेशों के साथ एकमेव सम्बन्ध ही से पर तृतीय ही अवस्था उत्पन्न हो जाती है - यह जीव और पुद्गलों का सम्बन्ध कोई नया नहीं हुआ किन्तु अनादिकालीन है - उन्हीं पुद्गलों में से कुछ नवीन पुद्गल वर्गणाओं का संयोग और कुछ का वियोग होता रहता है - यही परम्परा निरन्तर कायम रहती है। इसी के फलस्वरूप संसारी प्राणी भव से भवान्तर, हीनाधिक ज्ञान, सुख-दुःख सामग्री इत्यादि फलों को प्राप्त करता रहता है।

जीव के जिन भावों के द्वारा वे पुद्गल वर्गणाएँ आती हैं - वे भाव भावकर्म संज्ञा से, और जो पुद्गल खिंचकर आते हैं वे द्रव्यकर्म कहलाते हैं द्रव्यकर्म और भावकर्म का सम्बन्ध बीजाङ्कुर की तरफ सतत् कायम रहता है।

ग्रहण की गई पुद्गल वर्गणायें नाना रूप से परिणत हो जाती हैं। वे ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणों का आच्छादन करती हैं। यह प्रक्रिया ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार किया गया भोजन, नाना धातु और उपधातुओं के रूप में स्वभादिक ही परिणत हो जाता है। इन्हीं पुद्गल वर्गणाओं को मुख्य रूप आठ रूपों में विभाजित कर, अवान्तर 148 भेदों में वर्गीकरण किया गया है। जो पुद्गल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्गणायें जीव के ज्ञान गुण को आच्छादित करती है वे ''ज्ञानावरण'' कारण में कार्य के उपचार से कही जाती है इस प्रकार जो जीव के दर्शन गुण का घात करे वे दर्शनावरण। जो सुख-दुख का वेदन कराये वे वेदनीय तथा जो हिताहित का विवेक नाश करदें वे मोहनीय, जो जीव को प्राप्त पर्यायों में रोककर रखे वे आयु, जो जीव को नाना शरीर प्राप्त कराने में कारण हों वे नाम, जो उच्च-नीच कुल की प्राप्ति में कारण हों वे गोत्र, तथा जो इच्छित दान, भोग आदि में विघ्न उत्पन्न करें वे अन्तराय कर्म से संज्ञित की जाती हैं। ये कर्मों की प्रकृतियों के मूलभेद हैं। उत्तर भेद मतिज्ञानादि रूप में प्राप्त होते हैं - मूल प्रकृतियों का मुख्य कार्य क्या है ? मूल प्रकृतियों के स्वरूप का स्पष्टीकरण प्रायः सिद्धान्त ग्रंथों में दृष्टिगोचर होता है। दर्शन और गोत्र कर्म के विषय में जो स्पष्टीकरण आगम में उपलब्ध होता है उससे प्रायः लोगों को इन दोनों के विषय में संशय बना ही रहता है। इसी प्रकार कुछ उत्तर प्रकृतियों के विषय में भी संशय बना ही रहता है यथा - यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, आदेय, अनादेय, सुभग, दुर्भग इत्यादि।

प्रस्तुत ग्रंथ में यह प्रयास ही किया गया है कि जहाँ भी मूल प्रकृतियाँ और उत्तर प्रकृतियाँ के लक्षण प्राप्त होते हैं और उनमें कुछ विशेषताएँ हैं तो सभी को आचार्य वीरसेन महाराज की धवला टीकाके अनुसार क्रमशः संकलित किया गया है। अध्येता कर्म प्रकृतियों के विषय को एक ही स्थल पर विभिन्न विभिन्न आचार्यों की परिभाषायें प्राप्त करने में सक्षम होंगे। जहाँ आचार्यों द्वारा प्रतिपादित लक्षण समान हों तो वहाँ उसही परिभाषा का संकलन किया है जो परिभाषा विवक्षित विषय का पूर्णतः स्पष्टीकरण प्रस्तुत करती है और शब्द संयोजना की अपेक्षा विशेषता प्रकट करती है। ग्रन्थ में सर्वप्रथम धवला टीका में आगत परिभाषायें, पश्चात् कर्म प्रकृति आचार्य अभयचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती कृत, तदनन्तर सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड इत्यादि ग्रंथों से परिभाषायें संकलित की गई हैं।

ग्रंथ में प्रकृतियों के अस्तित्व को यदि स्वीकार नहीं किया जाय तो कौन-सा दोष उत्पन्न होता है इसका भी धवला पुस्तक 6 के अनुसार स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया है।

मूल प्रकृतियों के बंध के योग्य परिणामों का भी संकलन राजवार्तिक, लब्धिसार, तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। आशा है यह कृति विद्वज्जन के साथ-साथ जनमानस के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।

दीपमालिका
19.10.98

विनोद जैन
अनिल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हार्दिक भावना

जैन धर्म के अनुसार आत्मा का कर्म प्रकृतियों के साथ अनादिकाल से सम्बन्ध चला आ रहा है, संक्षेप में कर्म प्रकृतियाँ आठ हैं और उत्तर भेदों की अपेक्षा 148 हैं। इन सब कर्म प्रकृतियों के वजह से आत्मा में जो परिणमन होता है वह विविध प्रकार है। मोहनीय के निमित्त से होने वाला परिणमन प्रमुख रूप से संसार का बंधन बढ़ाता है। इसे जीतने का प्रयत्न करना भव्यात्मा का कर्त्तव्य है। कर्म प्रकृति की परिभाषायें धवला, रा.वा., स.सि., कर्म प्रकृति आदि ग्रंथों में विभिन्न प्रकार से दी गई हैं। उन सब का 105 पूज्य दृढ़मती माताजी के सन्निधान में समीक्षाकर इस पुस्तक का निर्माण किया गया है। इस पुस्तक के सम्पादन में श्री ब्र. विनोद कुमार जैन, शास्त्री और ब्र. अनिल कुमार जी शास्त्री ने पर्याप्त परिश्रम किया है। श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल के स्नातक इस तरह साहित्यिक कार्यों में अपनी रुचि ले रहे हैं। इसकी बड़ी प्रसन्नता है। आशा है ये सब इसी तरह साहित्यक कार्यों में अग्रसर होते रहेंगे।

पिसनहारी मढ़िया
जबलपुर

विनीत
डा. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसंहार

"प्रकृति-परिचय" नामक प्रस्तुत कृति में प्रकृति अर्थात् कर्म है।

प्रकृति के परिचय को पाना यानी से समझिये कि अपने वर्तमान जीवन का परिचय पाना है क्योंकि वह कर्मों के उदयाधीन है। जैसी करनी वैसी भरनी वाली सूक्ति कर्म-सिद्धान्त से सिद्ध है। जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों में इतना सूक्ष्म विवेचन कर्म का सिद्धान्त का अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होता, हम सबका महान पुण्योदय है कि आचार्यों ने दयाभाव / कल्याणभाव से उपदेश दिया लेकिन हम हैं कि उपदेश को आदर नहीं देते, उसकी कद्र नहीं करते। जो भी समय मिला। बुद्धि बल मिला उसका सदुपयोग करके निश्चित ही छोटी सी कृति के महान् विषय का परिचय प्राप्त करें। प्रकृति परिचय के साथ-2 इसमें विशेष ज्ञातव्य विषय यह भी है कि ये कर्म संचित कैसे होते हैं? किन विचारों से किन वचनों से किन-किन चेष्टाओं से संचित होते हैं? जो-जो कारण इसमें बतायें हैं उन-उन विचारों, वचनों एवं कार्यगत चेष्टाओं से बचने का प्रयास करेंगे तो निश्चित ही उन कर्मों के रोकने का और उनसे मुक्ति का लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

एक प्रश्न सहज ही हो सकता है कि ये कर्म क्या हमें आंखों से दिखते हैं? या दिख सकते हैं? जिन पर विश्वास किया जाये? आचार्य कहते हैं वर्तमान में जो बौद्धिक बल है ज्ञान है उससे या आंखों से इनको नहीं देखा जा सकता किन्तु अन्य सूक्ष्म ज्ञानी प्रत्यक्षज्ञानी सर्वज्ञ, सर्वदर्शी इन्हें भी देखते हैं, जानते हैं और उन्हीं की ये वाणी है उन्हीं का ये उपदेश है इसलिए वे सर्वज्ञ हमें मान्य हैं तो उनका उपदेश भी मान्य है। कोई सर्वज्ञ को भी स्वीकारोक्ति न दे क्योंकि वर्तमान में साक्षात् विद्यमान नहीं है फिर भी हमारा जीवन और जगत के प्राणियों के विविधता युक्त जीवन तो साक्षात् दिख रहे हैं, सुख दुःख कर्म का फल है ज्ञान, अज्ञान, मिथ्याज्ञान कर्मो का फल हैं, रोग भूख-प्यास आदि सभी कर्मो के फल है ऐसा तो सभी मानते ही हैं जब इस बात को मानते हैं तो निश्चित जिसका ये फल है जो दृश्यमान है उसको कोई न कोई कारण का भी निश्चित जिसका ये फल है जो दृश्यमान है उसको कोई न कोई कारण का भी निश्चित रूप से अस्तित्व है ही इसे मानना ही पड़ेगा, चाहे वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अदृश्य ही क्यों न हो कार्य है तो उसका कारण नियामक है यह तो न्याय सर्वमान्य है फिर हम क्यों इसे मानने से दूर होने की कोशिश करे। एक बार नहीं बार-बार पढ़े। अध्ययन करके मात्र शाब्दिक जानकारी का ध्येय न हो किन्तु अपने व्यवहारिक जीवन में उस सिद्धान्त की तुलना करके। जहां बचने की आवश्यकता है उससे बचने का और जो करने योग्य है उसे करने का भरसक प्रयत्न करें तो निश्चित ही इस अल्पकृति के महान विषय का परिचय प्राप्त कर हमारे जीवन की कर्म मुक्त वास्तविक, स्वभाविक, प्राकृतिक अवस्था का परिचय प्राप्त कर लेंगे। और प्रकृति से परे अर्थात् कर्म से परे प्रकृतिमय अर्थात् स्वाभाविक जीवन जीये यही अन्तः प्रेरणा यही सद्भावना.....।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरण	1
प्रतिज्ञा वचन	1
प्रकृति शब्द की व्युत्पत्ति	1
प्रकृति के मूलोत्तर भेद	1
मूल प्रकृतियों के भेद	1
ज्ञानावरणीय कर्म का लक्षण	2
ज्ञानावरणीय के भेद	2
आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय का लक्षण	3
श्रुतज्ञानावरणीय का लक्षण	3
अवधिज्ञानावरणीय का लक्षण	4
मनः पर्ययज्ञानावरणीय का लक्षण	4
केवलज्ञानावरणीय का लक्षण	5
ज्ञानावरण व दर्शनावरण के बन्ध योग्य परिणाम	5
दर्शनावरणीय का लक्षण	6
दर्शनावरणीय के भेद	7
निद्रानिद्रा का लक्षण	7
प्रचलाप्रचला का लक्षण	8
स्त्यानगृद्धि का लक्षण	8
निद्रा का लक्षण	9
प्रचला का लक्षण	10
चक्षुदर्शनावरणीय का लक्षण	11
अचक्षुदर्शनावरणीय का लक्षण	11
अवधिदर्शनावरणीय का लक्षण	11
केवलदर्शनावरणीय का लक्षण	12
वेदनीय का लक्षण	12

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदनीय के भेद	13
सातावेदनीय का लक्षण	13
असातावेदनीय का लक्षण	14
सातावेदनीय के बंध योग्य परिणाम	15
असातावेदनीय के बंध योग्य परिणाम	15
मोहनीय कर्म का लक्षण	16
मोहनीय कर्म के भेद	17
दर्शनमोहनीय का लक्षण	17
दर्शनमोहनीय के भेद	17
सम्यक्त्व का लक्षण	18
मिथ्यात्व का लक्षण	18
सम्यग्मिथ्यात्व का लक्षण	18
चारित्रमोहनीय का लक्षण	19
चारित्रमोहनीय के भेद	20
कषाय का लक्षण	20
कषायवेदनीय का लक्षण	21
नोकषाय का लक्षण	21
नोकषायवेदनीय का लक्षण	21
कषायवेदनीय के भेद	21
अनन्तानुबंधी क्रोधादि के लक्षण	22
अप्रत्याख्यान क्रोधादि के लक्षण	22
प्रत्याख्यान क्रोधादि के लक्षण	23
संज्वलन क्रोधादि के लक्षण	23
नोकषाय वेदनीय के भेद	24
स्त्रीवेद का लक्षण	24
पुरुषवेद का लक्षण	25
नपुसंक वेद का लक्षण	25
हास्य का लक्षण	26
रति का लक्षण	26
अरति का लक्षण	27
शोक का लक्षण	28

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भय का लक्षण 28
जुगुप्सा का लक्षण 29
दर्शनमोहनीय के बंध योग्य परिणाम 29
कषायवेदनीय के बन्ध योग्य परिणाम 30
अकषायवेदनीय के बन्ध योग्य परिणाम 30
आयुकर्म का लक्षण 31
आयु कर्म के भेद 32
नारकायु का लक्षण 33
तिर्यंचायु का लक्षण 33
मनुष्यायु का लक्षण 34
देवायु का लक्षण 34
नरकायु सामान्य के बन्ध योग्य परिणाम 35
नरकायु विशेष के बन्ध योग्य परिणाम 36
कर्म भूमिज तिर्यंच आयु के बन्ध योग्य परिणाम 36
भोगभूमिज निर्यंच आयु के बन्ध योग्य परिणाम 37
कर्मभूमिज मनुष्यायु के बन्ध योग्य परिणाम 38
कुलकरों की आयु के बन्ध योग्य परिणाम 40
सुभोगभूमिज मनुष्यायु के बन्ध योग्य परिणाम 41
कुभोगभूमिज मनुष्यायु के बन्ध योग्य परिणाम 42
देवायु सामान्य के बन्ध योग्य परिणाम 43
भवनत्रिकायु सामान्य के बन्ध योग्य परिणाम 44
भवनवासी देवायु के बन्ध योग्य परिणाम 45
व्यन्तर तथा नीच देवों की आयु के बन्ध योग्य परिणाम 46
ज्योतिष देवायु के बन्ध योग्य परिणाम 47
कल्पवासी देवायु सामान्य के बन्ध योग्य परिणाम 47
कल्पवासी देवायु विशेष के बन्ध योग्य परिणाम 48
लौकान्तिक देवायु के बन्ध योग्य परिणाम 49
नामकर्म की परिभाषा 50
नामकर्म के भेद 50
गतिनामकर्म का लक्षण 51
गतिनामकर्म के भेद 51

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकगति का लक्षण	51
तिर्यग्गति का लक्षण	52
मनुष्यगति का लक्षण	53
देवगति का लक्षण	53
जातिनामकर्म का लक्षण	54
जातिनामकर्म के भेद	55
एकेन्द्रियजाति का लक्षण	55
द्वीन्द्रिय जाति का लक्षण	55
त्रीन्द्रिय जाति का लक्षण	56
चतुरिन्द्रिय जाति का लक्षण	56
पंचेन्द्रिय जाति का लक्षण	57
शरीरनामकर्म का लक्षण	57
शरीरनामकर्म के भेद	58
औदारिक शरीर का लक्षण	58
वैक्रियिक शरीर का लक्षण	58
आहारक शरीर का लक्षण	59
तैजस शरीर का लक्षण	59
कार्मण शरीर का लक्षण	60
शरीर बंधन नामकर्म का लक्षण	60
शरीर बंधन नामकर्म के भेद	61
औदारिक शरीर बंधन नामकर्म का लक्षण	61
वैक्रियिक शरीर बंधन का लक्षण	62
आहारक शरीर बंधन का लक्षण	62
तैजस शरीर बंधन का लक्षण	62
कार्मण शरीर बंधन का लक्षण	62
शरीर संघात का लक्षण	62
शरीर संघात के भेद	63
औदारिक शरीर संघात का लक्षण	64
वैक्रियिक शरीर संघात का लक्षण	64
आहारक शरीर संघात का लक्षण	64
तैजस शरीर संघात का लक्षण	64

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्मण शरीर संघात का लक्षण 65
शरीर संस्थान का लक्षण 65
शरीर संस्थान के भेद 65
समचतुरस्र शरीर संस्थान का लक्षण 66
न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान का लक्षण 67
स्वाति संस्थान का लक्षण 67
कुब्ज संस्थान का लक्षण 68
वामन संस्थान का लक्षण 68
हुण्ड संस्थान का लक्षण 69
शरीरांगोपांग का लक्षण 69
शरीरांगोपांग के भेद 70
औदारिक शरीर अंगोपांग का लक्षण 70
वैक्रियिक शरीर अंगोपांग का लक्षण 70
आहारक शरीर अंगोपांग का लक्षण 71
शरीर संहनन कर्म का लक्षण 71
शरीर संहनन कर्म के भेद 71
वज्रऋषभवज्रनाराच संहनन का लक्षण 72
वज्रनाराच संहनन का लक्षण 72
नाराच संहनन का लक्षण 73
अर्धनाराच संहनन का लक्षण 73
कीलक संहनन का लक्षण 73
असंप्राप्तासृपाटिका संहनन का लक्षण 73
वर्णकर्म का लक्षण 74
वर्णकर्म के भेद 75
कृष्ण वर्ण का लक्षण 75
नीलवर्ण का लक्षण 75
रुधिर वर्ण का लक्षण 75
हारिद्र वर्ण का लक्षण 75
शुक्ल वर्ण का लक्षण 75
गंधनामकर्म का लक्षण 76
गंध के भेद 76

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरभि गंध का लक्षण	76
दुरभि गंध का लक्षण	77
रस का लक्षण	77
रस के भेद	77
तिक्त रस का लक्षण	78
कटुक रस का लक्षण	78
कषाय रस का लक्षण	78
आम्ल रस का लक्षण	78
मधुर रस का लक्षण	78
स्पर्श का लक्षण	79
स्पर्शनामकर्म के भेद	79
कर्कश स्पर्श का लक्षण	79
मृदुकस्पर्श का लक्षण	80
गुरुस्पर्श का लक्षण	80
लघुस्पर्श का लक्षण	80
स्निग्ध स्पर्श का लक्षण	80
रुक्ष स्पर्श का लक्षण	80
शीत स्पर्श का लक्षण	80
उष्ण स्पर्श का लक्षण	80
आनुपूर्वी का लक्षण	81
आनुपूर्वी में उदाहरण	81
आनुपूर्वी के भेद	82
नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी का लक्षण	82
तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी का लक्षण	82
मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी का लक्षण	82
देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी का लक्षण	83
अगुरुलघुनामकर्म का लक्षण	83
उपघात का लक्षण	83
परघात का लक्षण	85
उच्छवास का लक्षण	86
आतप का लक्षण	87

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्योत का लक्षण	87
विहायोगतिनामकर्म का लक्षण	88
विहायोगति के भेद	89
प्रशस्त विहायोगति का लक्षण	89
अप्रशस्त विहायोगति का लक्षण	89
त्रस का लक्षण	90
स्थावर का लक्षण	90
बादरनामकर्म का लक्षण	91
सूक्ष्मनामकर्म का लक्षण	92
पर्याप्त का लक्षण	93
अपर्याप्त का लक्षण	94
प्रत्येक शरीर का लक्षण	94
साधारणशरीर का लक्षण	95
स्थिर नामकर्म का लक्षण	95
अस्थिर नामकर्म का लक्षण	96
शुभ नामकर्म का लक्षण	98
अशुभ नामकर्म का लक्षण	98
सुभग नामकर्म का लक्षण	99
दुर्भग नामकर्म का लक्षण	99
सुस्वर नामकर्म का लक्षण	100
दुःस्वर नामकर्म का लक्षण	100
आदेय नामकर्म का लक्षण	101
अनादेय नामकर्म का लक्षण	101
यशःकीर्ति नामकर्म का लक्षण	101
अयशः कीर्ति नामकर्म का लक्षण	102
निर्माण नामकर्म का लक्षण	103
तीर्थंकर नामकर्म का लक्षण	104
अशुभनामकर्म के बन्ध योग्य परिणाम	104
शुभनामकर्म के बन्ध योग्य परिणाम	105
गोत्रकर्म का लक्षण	106
गोत्रकर्म के भेद	106

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्च गोत्र कर्म का लक्षण 106
नीच गोत्र कर्म का लक्षण 107
उच्च नीच गोत्र के बन्ध योग्य परिणाम 108
अंतराय कर्म का लक्षण 109
अंतराय कर्म के भेद 110
दानान्तराय कर्म का लक्षण 110
लाभान्तराय कर्म का लक्षण 110
भोगान्तराय कर्म का लक्षण 110
परिभोगान्तराय कर्म का लक्षण 111
वीर्यान्तराय कर्म का लक्षण 111
दानादि अंतराय कर्मों के लक्षण 111
अन्तराय कर्म के बन्ध योग्य परिणाम 112

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेत-सूची

ध ..../	धवला-पुस्तक संख्या/पृष्ठ संख्या
ध ..../ ....आ.	धवला-पुस्तक संख्या/पृष्ठ संख्या (आधार)
क.प्र...../	कर्म प्रकृति आ.अभयचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कृत / पृष्ठ संख्या
स.सि. ..... /.....	सर्वार्थ सिद्धि - अध्याय संख्या /सूत्र संख्या
रा.वा. ..... /.....	राजवार्तिक - अध्याय संख्या /सूत्र संख्या
त.वृ.भा..... /.....	तत्त्वार्थ वृत्ति भास्कर नन्दि -अध्याय संख्या/सूत्र संख्या
त.वृ.श्रु ..../	तत्त्वार्थ वृत्ति श्रुतसागरी अध्याय संख्या / सूत्र संख्या
वृ.द्र.स. ..../	वृहद् द्रव्य संग्रह गाथा संख्या /
गो.क. जी. प्र. ..../	गोम्मट सार कर्मकाण्ड- जीव प्रबोधनी गाथा संख्या/
गो.जी. जी. प्र. ..../	गोम्मट सार जीवकाण्ड जीव प्रबोधनी गाथा संख्या
ह.पु. ..../	हरिवंश पुराण सर्ग संख्या /श्लोक संख्या
ति. प. ..../	तिलोय पण्णत्ति अध्याय /गाथा संख्या
त्रि. सा. ..../	त्रिलोकसार अधिकार /गाथा संख्या
त.सू. ..../	तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय संख्या /सूत्र संख्या
अ.प्र. ..../	अर्थ प्रकाशिका अध्याय संख्या/सूत्र संख्या
गो.क.सं.च. / ..../	गोम्मटसार कर्मकाण्डसम्यग्ज्ञान चन्द्रिका / गाथा संख्या
त.सा. / ..../	तत्त्वार्थ सार अध्याय संख्या/श्लोक संख्या
भ.आ.वि. ...../.....	भगवती आराधना, विजयोदयी टीका गाथा संख्या/
मू. ...../.....	मूलाचार अधिकार संख्या /गाथा संख्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

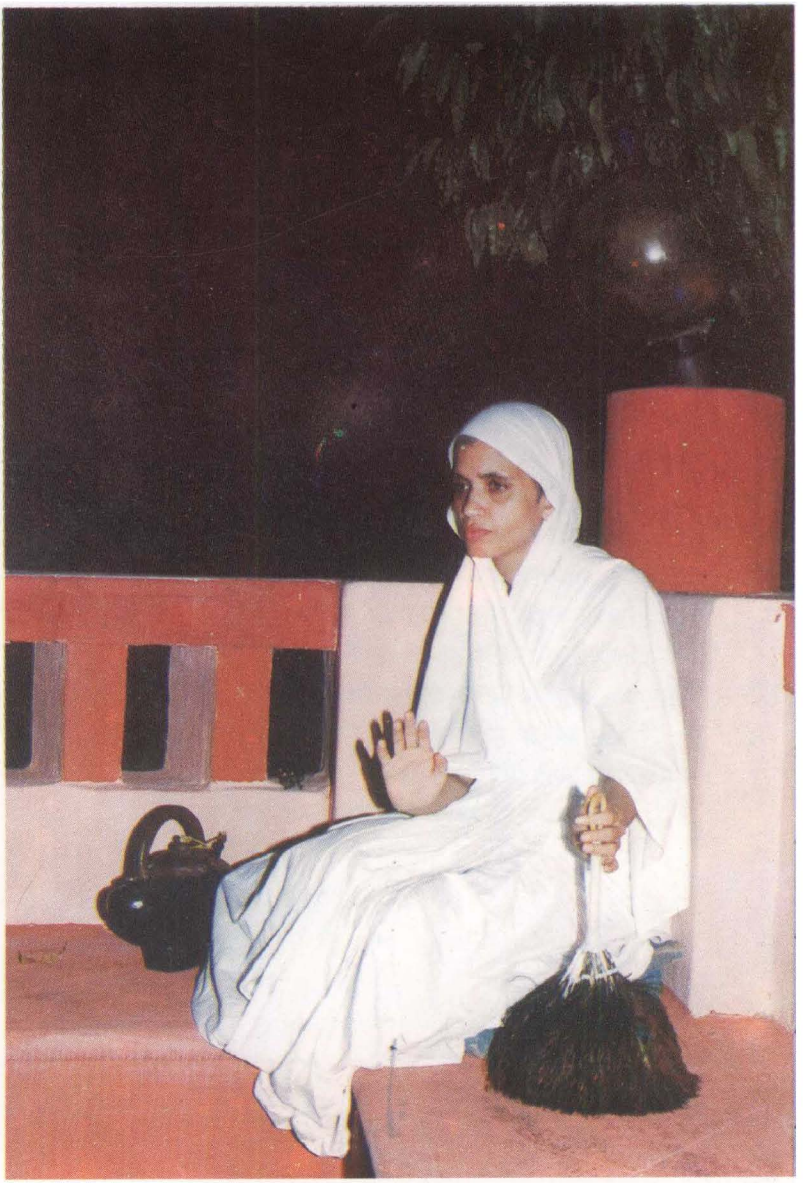

आर्यिका दृढ़मती जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति-परिचय

वाग्देव्याः कुलमन्दिरं बुधजनानन्दैकचन्द्रोदयं,
मुक्तेर्मङ्गल-मग्रिमं शिवपथप्रस्थानदिव्यानकम्।
तत्त्वाभासकुरङ्गपञ्चवदनं भव्यान् विनेतुं क्षमं,
तच्छ्रोत्राञ्जलिभिः पिबन्तु गुणिनः सिद्धान्तवार्धेः पयः॥

जो सरस्वती देवी का कुलभवन है, विद्वज्जनों को आनन्द देने वाला अद्वितीय चन्द्रोदय है, मुक्ति का प्रधान मङ्गल है, मोक्षपथ पर प्रस्थान करने का दिव्य वादित्र है, मिथ्यातत्त्वरूप मृगों के लिए सिंहस्वरूप है तथा भव्यजीवों को शिक्षित करने के लिए समर्थ है, उस सिद्धान्त जिनागमरूप समुद्र के जल को गुणी मनुष्य कर्णरूपी अञ्जलियों से पियें।

प्रतिज्ञा वचन

इदाणिं पयडिसमुक्कित्तणं कस्सामो

अब प्रकृतियों के स्वरूप का निरूपण करेंगे। (ध. 6/5)

प्रकृतिशब्द की व्युत्पत्ती

प्रक्रियते अज्ञानादिकं फलमनया आत्मनः इति प्रकृति शब्द व्युत्पत्ते :

जिसके द्वारा आत्मा को अज्ञानादि फल रूप किया जाता है वह प्रकृति है। यह प्रकृति शब्द की व्युत्पत्ति है। (ध. 12/303)

प्रकृतियों के मुख्य विभाजन

तं पि पयडिसमुक्कित्तणं, मूलुत्तरपयडिसमुक्कित्तणभेएण दुविहं होइ।

वह प्रकृतिसमुत्कीर्तन भी मूल प्रकृति समुत्कीर्तन और उत्तरप्रकृति समुत्कीर्तन के भेद से दो प्रकार का है। (ध. 6/5)

मूल प्रकृति के आठ भेद

णाणावरणीयं। दंसणावरणीयं। वेदणीयं। मोहणीयं। आउअं। णामं। गोदं। अंतरायं चेदि।..... अट्ठेव मूलपयडीओ।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतराय - ये आठों ही कर्मों की मूल प्रकृतियाँ हैं। (ध. 6/6-14)

ज्ञानावरणीय कर्म

णाणमवबोहो अवगमो परिच्छेदो इदि एयट्ठो। तमावारेदि त्ति णाणावरणीयं कम्मं।

ज्ञान, अवबोध, अवगम और परिच्छेद, ये सब एकार्थ वाचक नाम हैं उस ज्ञान को जो आवरण करता है, वह ज्ञानावरणीय कर्म है। (ध. 6/6)

णाणावारओ पोग्गलक्खंधो पवाहसरूवेण अणाइबंधणबद्धो णाणावरणीयमिदि भण्णदे।

प्रवाहस्वरूप से अनादि-बंधन-बद्ध ज्ञान का आवरण करने वाला पुद्गल-स्कन्ध 'ज्ञानावरणीय कर्म' कहलाता है। (ध. 6/9)

बहिरङ्गार्थ विषयोपयोगप्रतिबन्धकं ज्ञानावरणमिति।

बहिरंग पदार्थ को विषय करने वाले उपयोग का प्रतिबन्धक ज्ञानावरण कर्म है। (ध. 1/383)

तत्रात्मनो ज्ञानं विशेषग्रहणमावृणोतीति ज्ञानावरणीयं श्लक्ष्णकाण्डपटवत्।

पतले रेशमी वस्त्र की तरह जो आत्मा के विशेष ग्रहण रूप ज्ञानगुण को ढँकता है, वह ज्ञानावरणीय है। (क.प्र./2)

विशेष- शंका-जीवद्रव्यसे पृथग्भूत पुद्गलद्रव्यके द्वारा जीवका लक्षणभूत ज्ञान कैसे विनष्ट किया जाता है ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जीवद्रव्यसे पृथग्भूत, घट, पट, स्तम्भ और अंधकार आदिक पदार्थ जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान के विनाशक पाये जाते हैं। (ध. 6/8)

ज्ञानावरणीय के भेद

णाणावरणीयस्य कम्मस्स पंच पयडीओ। आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि।

ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृतियाँ हैं। आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनः पर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय। (ध. 13/209)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय

अहिमुह-णियमियअत्थावबोहो आभिणिबोहो । थूल वट्टमाण अणंतरिदअत्था अहिमुहा। चक्खिंदिए रूवं णियमिदं, सोदिंदिए सद्दो, घाणिंदिए गंधो, जिब्भिंदिए रसो, फासिंदिए फासो, णोइंदिए दिट्ठ-सुदाणुभूदत्था णियमिदा । अहिमुह णियमिदट्ठेसु जो बोधो सो आहिणिबोधो । अहिणिबोध एव आहिणिबोधियणाणं । एवं विधस्स णाणस्य जमावरणं तमाभिणिबोहियणाणावरणीयं।

अभिमुख और नियमित अर्थ के अवबोध को अभिनिबोध कहते हैं। स्थूल, वर्तमान और अनंतरित अर्थात् व्यवधान रहित अर्थों को अभिमुख कहते हैं। चक्षुरिन्द्रिय में रूप नियमित है श्रोत्रेन्द्रिय में शब्द, घ्राणेन्द्रिय में गंध, जिव्हेन्द्रिय में रस, स्पर्शनेन्द्रिय में स्पर्श और नोइन्द्रिय अर्थात् मन में दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पदार्थ नियमित हैं। इस प्रकार के अभिमुख और नियमित पदार्थों में जो बोध होता है, वह अभिनिबोध है। अभिनिबोध ही आभिनिबोधिक ज्ञान कहलाता है। इस प्रकार के ज्ञान का जो आवारण करता है उसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

(ध. 6/15-21)

तत्र पञ्चभिरिन्द्रियैर्मनसा च मननं ज्ञानं मतिज्ञानं तदावृणोतीति मतिज्ञानावरणीयम्।

पाँच इन्द्रियों तथा मनकी सहायता से होने वाला मननरूप ज्ञान मतिज्ञान है, उसे जो ढँकता है वह मतिज्ञानावरणीय है। (क.प्र./5)

श्रुतज्ञानावरणीय

सुदणाणं णाम इंदिएहि गहिदत्थादो तदो पुधभूदत्थग्गहणं, जहा सद्दादो घड़ादीणमुवलंभो, धूमादो अग्गिस्सुवलंभो वा। सुदणाणस्स आवरणीयं सुदणाणावरणीयं।

इन्द्रियों से ग्रहण किये गये पदार्थ से उससे पृथग्भूत पदार्थ का ग्रहण करना श्रुतज्ञान है - जैसे शब्द से घट आदि पदार्थों का जानना, अथवा धूम से अग्नि का ग्रहण करना। श्रुतज्ञान के आवरण करने वाले कर्म को श्रुतज्ञानावरणीय कहते हैं। (ध. 6/21)

मतिज्ञानगृहीतार्थादन्यस्यार्थस्य ज्ञानं श्रुतज्ञानं तदावृणोतीति श्रुतज्ञानावरणीयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिज्ञान द्वारा ग्रहण किये गये अर्थ से भिन्न अर्थ का ज्ञान श्रुतज्ञान है, उसे जो आवृत करता है वह श्रुतज्ञानावरणीय है। (क.प्र. /5)

अवधिज्ञानावरणीय

अवाग्धानादवधि ; अवधिश्च स ज्ञानं च तत् अवधिज्ञानम्। अथवा अवधिर्मर्यादा, अवधेर्ज्ञानमवधि ज्ञानम्। एवंविहस्स ओहिणाणस्स जमावारयं तमोहिणाणावरणीयं।

जो नीचे की ओर प्रवृत्त हो, उसे अवधि कहते हैं। अवधिरूप जो ज्ञान होता है, वह अवधिज्ञान कहलाता है। अथवा अवधि नाम मर्यादा का है, इसलिये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा विषय संबंधी मर्यादा के ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। इस प्रकार के अवधिज्ञान का आवरण करने वाला जो कर्म है, उसे अवधिज्ञानावरणीय कहते हैं। (ध. 6/25-28)

परमाणुआदि महक्खंधं तं पोग्गलदव्वविसयओहिणाणकारणसगसंवेयणं ओहिदंसणं। तस्य आवारयं ओहिदंसणावरणीयं।

परमाणु से लेकर महास्कन्ध पर्यंत पुद्गल द्रव्य को विषय करने वाले अवधिज्ञान के कारणभूत स्वसंवेदन का नाम अवधिदर्शन है और इसके आवारक कर्म का नाम अवधि दर्शनावरणीय है। ध. 13/355)

वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तसामान्यपुद्गलद्रव्यं तत्संबन्धिसंसारीजीवद्रव्याणि च देशान्तरस्थानि कालान्तरस्थानि च द्रव्यक्षेत्रकालभवभावानवधीकृत्य यत्प्रत्यक्षं जानातीत्यवधिज्ञानं तदावृणोतीत्यवधिज्ञानावरणीयम्।

भिन्न देश तथा भिन्न काल में स्थित वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श युक्त सामान्य पुद्गल द्रव्य तथा पुद्गल द्रव्य के सम्बन्ध से युक्त संसारी जीव द्रव्यों को जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव की मर्यादा लेकर प्रत्यक्ष जानता है, वह अवधिज्ञान कहलाता है, उसका आवरण करने वाला अवधिज्ञानावरणीय है। (क.प्र./5)

मनः पर्यय ज्ञानावरणीय

परकीय मनोगतोऽर्थो मनः, तस्य पर्यायाः विशेषाः मनः पर्ययाः, तान् जानातीति मनः पर्ययज्ञानं मणपज्जवणाणस्स आवरणं मणपज्जवणाणावरणीयं।

दूसरे व्यक्ति के मन में स्थित पदार्थ मन कहलाता है। उसकी पर्यायों अर्थात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषों को मनः पर्यय कहते हैं। उनको जो ज्ञान जानता है वह मनः पर्ययज्ञान कहलाता है । मनः पर्ययज्ञान का आवरण करने वाला कर्म मनः पर्ययज्ञानावरणीय कहलाता है। (ध. 6/28-29)

परेषां मनसि वर्तमानमर्थं यज्जानाति तन्मनःपर्ययज्ञानं तदावृणोतीति मनःपर्ययज्ञानावरणीयम्।

दूसरों के मन में स्थित अर्थ को जो जानता है, वह मनः पर्ययज्ञान है, उसे जो रोकता है, वह मनःपर्ययज्ञानावरणीय है। (क.प्र./6)

केवलज्ञानावरणीय

केवलमसहायमिंदियालोयणिरवेक्खं तिकालगोयराणंतपज्जायसमवेदाणंतवत्थु परिच्छेदयमसंकुडियमसवत्तं केवलणाणं एदस्स आवरणं केवल णाणावरणीयं।

केवल असहाय को कहते हैं। जो ज्ञान असहाय अर्थात् इन्द्रिय और आलोक की अपेक्षा रहित है, त्रिकालगोचर है अनंत पर्यायों से समवेत अनन्त वस्तुओं का जाननेवाला है , असंकुटित अर्थात् सर्वव्यापक है और असपत्न अर्थात् प्रतिपक्षी रहित है। उसे केवल ज्ञान कहते हैं। इस केवलज्ञान के आवरण करने वाले कर्म को केवलज्ञानावरणीय कहते हैं। (ध. 6/29-30)

इन्द्रियाणि प्रकाशं मनश्चानपेक्ष्य त्रिकालगोचरलोकसकलपदार्थानां युगपदवभासनं केवलज्ञानं तदावृणोतीति केवलज्ञानावरणीयम्।

इन्द्रिय, प्रकाश और मनकी सहायता के बिना त्रिकाल गोचर लोक तथा अलोक के समस्त पदार्थों का एक साथ अवभास (ज्ञान) केवल ज्ञान है, उसे जो आवृत करता है, वह केवलज्ञानावरणीय है। (क.प्र./6)

ज्ञानावरण व दर्शनावरण के बन्ध योग्य परिणाम

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः। एतेन ज्ञानदर्शनवत्सु तत्साधनेषु च प्रदोषादयो योज्याः , तन्निमित्तत्वात्। ....ज्ञानविषयाः प्रदोषादयो ज्ञानावरणस्य। दर्शनविषयाः प्रदोषादयो दर्शनावरणस्येति।

ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन, और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव हैं । ज्ञान और दर्शनवालों के विषय में तथा उनके साधनों के विषय में प्रदोषादिकी योजना करनी चाहिए, क्योंकि ये उनके निमित्त से होते हैं। अथवा ज्ञान सम्बन्धी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदोषादिक ज्ञानावरण के आस्रव हैं और दर्शन सम्बन्धी प्रदोषादिक दर्शनावरण के आस्रव हैं।

(त.सू. , स.सि. 6 /10)

आचार्योपाध्यायप्रत्यनीकत्व-अकालाध्ययन-श्रद्धाभाव-अभ्यासालस्य-अनादरार्थ-श्रवण-तीर्थोपरोध-बहुश्रुतगर्व-मिथ्योपदेश-बहुश्रुतावमान-स्वपक्षपरिग्रहपण्डितत्व-स्वपक्षपरित्याग-अबद्धप्रलाप-उत्सूत्रवाद-साध्यपूर्वकज्ञानाधिगम-शास्त्रविक्रय-प्राणातिपातादयः ज्ञानावरणस्यास्रवाः। दर्शनमात्सर्याऽन्तराय-नेत्रोत्पाटनेन्द्रियप्रत्यनीकत्व-दृष्टिगौरवआ-यतस्वापिता-दिवाशयनालस्य-नास्तिक्यपरिग्रहसम्य-ग्दृष्टिसंदूषणकुतीर्थप्रशंसा-प्राणव्यपरोपण-यतिजनजुगुप्सादयो दर्शनावरण-स्यास्रवाः, इत्यस्ति आस्रवभेदः।

आचार्य और उपाध्याय के प्रतिकूल चलना; अकाल अध्ययन ; अश्रद्धा; अभ्यास में आलस्य ; अनादर से अर्थ सुनना ; तीर्थोपरोध अर्थात् दिव्यध्वनिके समय स्वयं व्याख्या करने लगना; बहुश्रुतपनेका गर्व; मिथ्ययोपदेश; बहुश्रुतका अपमान करना ; स्वपक्ष का दुराग्रह ; दुराग्रहवश असम्बद्ध प्रलाप करना ; स्वपक्ष परित्याग या सूत्र विरुद्ध बोलना; असिद्ध से ज्ञानप्राप्ति; शास्त्रविक्रय और हिंसादिकार्यज्ञानावरण के आस्रव के कारण हैं। दर्शन मात्सर्य; दर्शन अन्तराय; आँखें फोड़ना ; इन्द्रियों के विपरीत प्रवृत्ति; दृष्टि का गर्व; दीर्घ निद्रा ; दिन में सोना ; आलस्य ; नास्तिकता; सम्यग्दृष्टियों में दूषण लगाना, कुतीर्थ की प्रशंसा; हिंसा और यतिजनों के प्रति ग्लानि भाव आदि भी दर्शनावरणीय के आस्रव के कारण हैं। इस प्रकार इन दोनों के आस्रव में भेद भी है। (रा.वा. 6 /10)

दर्शनावरणीय

अप्पविसओ उवजोगो दंसणं। एदं दंसणमावारेदि त्ति दंसणावरणीयं।

आत्म विषयक उपयोग को दर्शन कहते हैं, इस प्रकार के दर्शनगुण को जो आवरण करता है, वह दर्शनावरणीय कर्म है। (ध. 6/9-10)

ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धस्वसंवेदो दर्शनं आत्मविषायोपभोग इत्यर्थः।

ज्ञान का उत्पादन करने वाले प्रयत्न से सम्बद्ध स्वसंवेदन अर्थात् आत्म-विषयक उपयोग को दर्शन कहते हैं। (ध6 / 32-33)

अंतरङ्गार्थ विषयोपयोगप्रतिबन्धकं दर्शनावरणीयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरंग पदार्थ को विषय करने वाले उपयोग का प्रतिबंधक दर्शनावरण कर्म है। (ध.1/383)

दर्शनं सामान्यग्रहणमावृणोतीति दर्शनावरणीयं प्रतिहारवत्।

प्रतिहार की तरह जो आत्मा के सामान्यग्रहण रूप दर्शन गुणको रोकता है, वह दर्शनावरणीय है। (क.प्र./3)

दर्शनमावृणोतीति दर्शनावरणीयं। तस्य का प्रकृतिः ? दर्शनप्रच्छानता। किंवत् ? राजद्वार प्रतिनियुक्तप्रतीहारवत्।

जो दर्शन को आवृत करता है वह दर्शनावरणीय है। जैसे राजद्वार पर बैठा द्वारपाल राजा को नहीं देखने देता, उसी प्रकार दर्शनावरण दर्शनगुण को आच्छादित करता है। (गो.का./जी.प्र.20)

दर्शनावरणीय कर्म के भेद

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ। णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा पयला य, चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि।

दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियाँ हैं -निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवल दर्शनावरणीय है। (ध 6/31)

निद्रानिद्रा

जिस्से पयडीए उदएण अइणिब्भरं सोवदि, अण्णेहि उट्ठाविज्जंतो वि ण उट्ठइ सा णिद्दाणिद्दा णाम।

जिस प्रकृति के उदय से अतिनिर्भर होकर सोता है और दूसरों के द्वारा उठाये जाने पर भी नहीं उठता है वह निद्रानिद्रा प्रकृति है। (ध. 13/354)

णिद्दाणिद्दाए तिव्वोदएण रुक्खग्गे विसमभूमीए जत्थ वा तत्थ वा देसे घोरंतो अघोरंतो वा णिब्भरं सुवदि।

निद्रानिद्रा प्रकृति के तीव्र उदय से जीव वृक्ष के शिखर पर, विषम भूमि पर, अथवा जिस किसी प्रदेश पर घुरघुराता हुआ या नहीं घुरघुराता हुआ निर्भर अर्थात् गाढ़ निद्रा में सोता है। (ध. 6/31)

उत्थापितेऽपि लोचनमुद्घाटयितुं न शक्नोति यतस्सा निद्रानिद्रा

जिसके कारण उठाये जाने (जगाये जाने) पर भी आँखें न खुल सकें, उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निद्रानिद्रा कहते हैं। (क.प्र. /8)

प्रचलाप्रचला

पयलापयलाए तिव्वोदएण वइट्ठओ वा उब्भवो वा मुहेण गलमाणलालो पुणो पुणो कंपमाणसरीरसिरो णिब्भरं सुवदि।

प्रचलाप्रचला प्रकृति के तीव्र उदय से बैठा या खड़ा हुआ मुँह से गिरती हुई लार सहित तथा बार-बार कंपते हुए शरीर और शिर से युक्त होता हुआ जीव निर्भर सोता है। (ध. 6/31-32)

जिस्से उदएण ट्ठियो णिसण्णो वि सोवदि गहगहियो व सीसं धुणदि वायाहयलया व चदुसु वि दिसासु लोट्टदि सा पयलापयला णाम।

जिसके उदय से स्थित व निषण्ण अर्थात् बैठा हुआ भी सो जाता है, भूत से गृहीत हुए के समान सिर धुनता है तथा वायु से आहत लताके समान चारों ही दिशाओं में लोटता है वह प्रचलाप्रचला प्रकृति है। (ध. 13/354)

यतो निद्रायमाणे लाला वहत्यङ्गानि चलन्ति सा प्रचलाप्रचला

जिसके कारण सोते हुए लार बहे तथा अंग चलें, उसे प्रचलाप्रचला कहते हैं। (क.प्र./8)

या क्रियात्मानं प्रचलयति सा प्रचला शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका। सैव पुनः पुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचला।

जो शोक, श्रम और मद आदि के कारण उत्पन्न हुई है और जो बैठे हुए प्राणी के भी नेत्र, गात्र की विक्रिया की सूचक है ऐसी जो क्रिया आत्मा को चलायमान करती है वह प्रचला है। तथा उसकी पुनः-पुनः आवृत्ति होना प्रचलाप्रचला है। (स.सि. 8/7)

स्त्यानगृद्धि

जिस्से णिद्दाए उदएण जंतो वि थंभियो व णिच्चलो चिट्ठदि, ट्ठियो वि वइसदि, वइट्ठओ वि णिवज्जदि, णिवण्णओ वि उट्ठाविदो वि ण उट्ठदि, सुत्तओ चेव पंथे वहदि, कसदि लुणदि परिवादिं कुणदि सा थीणगिद्धी णाम।

जिस निद्रा के उदय से जाता हुआ भी स्तम्भित किये गये के समान निश्चल खड़ा रहता है, खड़ाखड़ा भी बैठ जाता है, बैठकर भी पड़ जाता है, पड़ा हुआ भी उठाने पर भी नहीं उठता है, सोता हुआ ही मार्ग में चलता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मारता है, काटता है और बड़बड़ाता है, वह स्त्यानगृद्धि प्रकृति है।
(ध.13/354)

थीणगिद्धीए तिव्वोदएण उट्ठाविदो वि पुणो सोवदि, सुत्तो वि कम्मं कुणदि, सुत्तो वि झंक्खइ, दंते कडकडावेइ।

स्त्यानगृद्धि के तीव्र उदय से उठाया गया भी जीव पुनः सो जाता है, सोता हुआ भी कुछ क्रिया करता रहता है, तथा सोते हुए भी बड़बड़ाता है और दांतों को कड़कड़ाता है। (ध. 6/32)

यत उत्थापितेऽपि पुनः पुनः स्वपिति निद्रायमाणे चोत्थाय कर्माणि करोति स्वप्नायते जल्पति च सा स्त्यानगृद्धिः।

जिसके कारण उठा देने पर भी फिर-फिर सो जाये, नींद में उठकर कार्य करे, स्वप्न देखे, बड़बड़ाये, उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं। (क.प्र./9)

स्वप्ने यया वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः।

जिसके निमित्त से स्वप्न में वीर्यविशेष का आविर्भाव होता है वह स्त्यानगृद्धि है। (स.सि. 8/7)

यदुदयाज्जीवो बहुतरं दिवाकृत्यं रौद्र कर्म करोति सा स्त्यानगृद्धिरुच्यते।

जिस कर्म के उदय से दिन में करने योग्य अन्य रौद्र कार्यों को रात्रि में कर डालता है वह स्त्यानगृद्धि निद्रा है। (त.वृ. श्रु. 8/7)

निद्रा

णिद्दाए तिव्वोदएण अप्पकालं सुवइ, उट्ठाविज्जंतो लहुं उट्ठेदि, अप्पसद्देण वि चेअइ।

निन्द्रा प्रकृति के तीव्र उदय से जीव अल्पकाल सोता है, उठाये जाने पर जल्दी उठ बैठता है और अल्प शब्द के द्वारा भी सचेत हो जाता है।
(ध. 6/32)

जिस्से पयडीए उदएण अद्धजगंतओ सोवदि, धूलीए भरिया इव लोयणा होंति, गुरुव भारेणोद्ठद्धं व सिरमइभारियं होइ सा णिद्दा णाम।

जिस प्रकृति के उदय से आधा जगता हुआ सोता है, धूलि से भरे हुए के समान नेत्र हो जाते हैं और गुरुभार को उठाये हुए के समान सिर अतिभारी हो जाता है वह निद्रा प्रकृति है। (ध. 13/354)

यतो गच्छतः स्थानं तिष्ठत उपवेशनमुपविशतश्शयनं च भवति सा निद्रा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसके कारण चलते, किसी स्थान पर ठहरते, बिस्तर पर बैठते नींद आती है, उसे निद्रा कहते हैं। (क.प्र./8)

मदखेदक्लमविनोदनार्थः स्वापो निद्रा।

मद, खेद और परिश्रमजन्य थकावट को दूर करने के लिये नींद लेना निद्रा है। (स.सि. 8/7)

प्रचला

पयलाए तिव्वोदएण वालुवाए भरियाइं व लोयणाइं होंति, गरुवभारोद्दव्वं व सीसं होदि, पुणो पुणो लोयणाइं उम्मिल-णिमिल्लणं कुणंति।

प्रचला प्रकृति के तीव्र उदय से लोचन वालुका से भरे हुए के समान हो जाते हैं, सिर गुरुभार को उठाये हुए से समान भारी हो जाता है और नेत्र पुनः पुनः उन्मीलन एवं निमीलन करने लगते हैं। (ध. 6/32)

जिस्से पयडीए उदएण अद्धसुत्तस्स सीसं मणा मणा चलदि सा पयला णाम।

जिस प्रकृति के उदय से आधे सोते हुए का सिर थोड़ा थोड़ा हिलता रहता है वह प्रचला प्रकृति है। (ध. 13/354)

यत ईषदुन्मील्य स्वपिति सुप्तोऽपीषदीषज्जानाति सा (प्रचला)।

जिसके कारण कुछ आँख खोलकर सोये तथा सोते हुए भी कुछ-कुछ जानता रहे, उसे प्रचला कहते हैं। (क.प्र./8)

या क्रियात्मानं प्रचलयति सा प्रचला शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका।

जो शोक, श्रम और मद आदि के कारण उत्पन्न हुई है और जो बैठे हुए प्राणी के भी नेत्र, गात्र की विक्रिया की सूचक है ऐसी जो क्रिया आत्मा को चलायमान करती है, वह प्रचला है। (स.सि. 8/7)

पचलुदपेण य जीवो ईसुम्मीलिप सुवेई सुत्तो वि।
ईसं ईसं जाणदि मुहुं मुहुं सोवदे मंदं ॥

प्रचला के उदय से जीव किंचित् नेत्र को खोलकर सोता है। सोता हुआ कुछ जानता रहता है। बार-बार मन्द सोता है। अर्थात् बारबार सोता व जगता रहता है। (गो.क. मू. /25)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुदर्शनावरणीय

चक्षुर्ज्ञानोत्पादक प्रयत्नानुविद्धस्वसंवेदने रूपदर्शनक्षमोऽहमिति संभावना हेतुश्चक्षुर्दर्शनम्। एतदावृणोतीति चक्षुदर्शनावरणीयम्।

चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी ज्ञान के उत्पन्न करने वाले प्रयत्न से संयुक्त स्वसंवेदन के होने पर "मैं रूप देखने में समर्थ हूँ," इस प्रकार की संभावना के हेतु को चक्षुदर्शन कहते हैं। इस चक्षुदर्शन के आवरण करने वाले कर्म को चक्षुदर्शनावरणीय कहते हैं। (ध. 6/33)

चक्खुविण्णाणुप्पायण कारणं सगसंवेयणं चक्खुदंसणं णाम। तस्सावारयं कम्मं चक्खुदंसणावरणीयं।

चाक्षुष विज्ञान को उत्पन्न करने वाला जो स्वसंवेदन है वह चक्षुदर्शन और उसका आवारक कर्म चक्षुदर्शनावरणीय कहलाता है। (ध. 13/355)

तत्र चक्षुषा वस्तुसामान्यग्रहणं चक्षुर्दर्शनं तदावृणोतीति चक्षुर्दर्शनावरणीयम्।

चक्षु द्वारा वस्तु का सामान्य ग्रहण चक्षुर्दर्शन कहलाता है, उसका आवरण करने वाला कर्म चक्षुर्दर्शनावरणीय है। (क.प्र./7)

अचक्षुदर्शनावरणीय

(चक्षुइन्द्रिय विहाय) शेषेन्द्रिय मनसां दर्शनमचक्षुर्दर्शनम्। तदावृणोतीत्य चक्षुर्दर्शनावरणीयम्।

चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों के और मन के दर्शन को अचक्षुदर्शन कहते हैं। इस अचक्षुदर्शन को जो आवरण करता है वह अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म है। (ध 6/33)

शेषैः स्पर्शनादीन्द्रियैर्मनसा च वस्तुसामान्यग्रहणमचक्षुर्दर्शनं तदावृणोतीत्यचक्षुर्दर्शनावरणीयम्।

चक्षु के अतिरिक्त शेष स्पर्शन आदि इन्द्रियों तथा मनके द्वारा वस्तु का सामान्यग्रहण अचक्षुदर्शन है, उसका आवरण करने वाला कर्म अचक्षुदर्शनावरणीय है।

(क.प्र./7)

अवधिदर्शनावरणीय

अवधेर्दर्शनं अवधिदर्शनं। तदावृणोतीत्यवधिदर्शनावरणीयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवधि के दर्शन को अवधिदर्शन कहते हैं। उस अवधिदर्शन को जो आवरण करता है। वह अवधिदर्शनावरणीय कर्म है। (ध. 6/33)

रूपिसामान्यग्रहणमवधिदर्शनं तदावृणोतीत्यवधिदर्शनावरणीयम्।

रूपी पदार्थों का सामान्यग्रहण अवधिर्शन है, उसका आवरण करने वाला कर्म अवधिदर्शनावरणीय है। (क.प्र./7)

केवलदर्शनावरणीय

केवलमसपत्नं केवलं च तद्दर्शनं च केवलदर्शनम्। तस्स आवरणं केवल दर्शनावरणीयम्।

केवल यह नाम प्रतिपक्ष रहित का है। प्रतिपक्ष रहित जो दर्शन होता है, उसे केवल दर्शन कहते हैं। उस केवलदर्शन के आवरण करने वाले कर्म को केवल दर्शनावरणीय कहते हैं। (ध. 6/33)

केवलणाणुप्पत्तिकारणसगसंवेयणं केवलदंसणं णाम। तस्य आवारय केवलदंसणावरणीयं।

केवलज्ञान की उत्पत्ति के कारण भूत स्वसंवेदनका नाम केवलदर्शन है और उसके आवारक कर्म का नाम केवलदर्शनावरणीय है। (ध. 13 /355-356)

समस्तवस्तुसामान्यग्रहणं केवलदर्शनं तदावृणोतीति केवलदर्शनावरणीयम्।

समस्त वस्तुओं का सामान्यग्रहण केवल दर्शन है, उसका आवरण करने वाला कर्म केवल दर्शनावरणीय है। (क.प्र./7)

वेदनीय

वेद्यत इति वेदनीयम् अथवा वेदयतीति वेदनीयम्। जीवस्य सुह दुक्खाणुहवणणिबंधणो पोग्गलक्खंधो मिच्छत्तादिपच्चयवसेण कम्मपज्जयपरिणदो जीवसमवेदो वेदणीयमिदि भण्णदे।

जो वेदन अर्थात् अनुभव किया जाता है, वह वेदनीय कर्म है। अथवा, जो वेदन कराता है, वह वेदनीय कर्म है। जीव के सुख और दुःख के अनुभवन का कारण, मिथ्यात्व आदि प्रत्ययों के वश से कर्मरूप पर्याय से परिणत और जीव के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध को प्राप्त पुद्गल-स्कन्ध 'वेदनीय' इस नाम से कहा जाता है। (ध.6/10)

जीवस्स सुह-दुक्खुप्पाययं कम्मं वेयणीयं णाम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव के सुख और दुःख का उत्पादक कर्म वेदनीय है। (ध.13/208)

सुखं दुःखं वा इन्द्रियद्वारैर्वेदयतीति वेदनीयं गुडलिप्तखड्गधारावत्।

गुड़-लपेटी तलवार की धारके समान जो सुख अथवा दुःख को इन्द्रियों द्वारा अनुभव कराये, वह वेदनीय कर्म है। (क.प्र./3)

विशेष - शंका - उस वेदनीयकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान - सुख और दुःखरूप कार्य अन्यथा हो नहीं सकते हैं, इस अन्यथानुपपत्तिसे वेदनीयकर्मका अस्तित्व जाना जाता है और कारणसे निरपेक्ष कार्य उत्पन्न होता नहीं क्योंकि, अन्यत्र उस प्रकार देखा नहीं जाता है। (ध. 6/11)

वेदनीय कर्म के भेद

वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडिओ। सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेव।

वेदनीय कर्म की दो प्रकृतियाँ हैं - सातावेदनीय और असातावेदनीय

(ध. 6/34-35)

सातावेदनीय

सत् सुखम् सदेव सातम् , यथा पंडुरमे[illegible] ंडुरं। सातं वेदयतीति सातवेदणीयं, दुक्खपडिकारहेदुदव्वसंपादयं दुक्खुप्पायण कम्मदव्व-सत्ति विणासयं च कम्मं सादावेदणीयं णाम।

'सत्' का अर्थ सुख है इसका ही यहां सात शब्द से ग्रहण किया गया है, जैसे कि पाण्डुर को पाण्डुर शब्द से भी ग्रहण किया जाता है। सात का जो वेदन कराती है वह साता वेदनीय प्रकृति है। दुःख के प्रतीकार करने में कारणभूत सामग्री का मिलानेवाला और दुःख के उत्पादक कर्म द्रव्य की शक्ति का विनाश करने वाला कर्म सातावेदनीय कहलाता है।(ध. 13/357)

सादं सुहं, तं वेदावेदि भुंजावेदि त्ति सादावेदणीयं।

साता यह नाम सुख का है, उस सुख को जो वेदन कराता है, अर्थात् भोग कराता है, वह सातावेदनीय कर्म है। (ध. 6/35)

तत्रेन्द्रियसुखकारणचन्दनकर्पूरसृग्वनितादिविषयप्राप्तिकारणं साता-वेदनीयम्।

इन्द्रिय-सुख के कारण चन्दन, कर्पूर, माला, वनिता आदि विषयों की प्राप्ति जिससे हो, वह सातावेदनीय है। (क.प्र./9)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्तिस्तत्सद्वेद्यम्। प्रशस्तं वेद्यं सद्वे-द्यमिति।

जिसके उदय से देवादिगतियों में शरीर और मन संबंधी सुख की प्राप्ति होती है वह सद्वेद्य है। प्रशस्त वेद्य का नाम सद्वेद्य है। (स.सि. 8/8)

रतिमोहनीयोदयबलेन जीवस्य सुखकारणेन्द्रियविषयानुभावनं कारयति तत्सातवेदनीयं।

रतिमोहनीय कर्म के उदय से सुख के कारणभूत इंद्रियों के विषयों का जो अनुभव कराता है वह सातवेदनीय कर्म है। (गो.क./जी.प्र./25)

असातावेदनीय

असादं दुक्खं, तं वेदावेदि भुंजावेदि त्ति असादावेदणीयं।

असाता नाम दुख का है, उसे जो वेदन या अनुभवन कराता है, उसे असाता वेदनीय कर्म कहते है। (ध 6/35)

जीवस्स सुहसहावस्स दुक्खुप्पाययं दुक्खपसमणहेदुदव्वाणमवसारयं च कम्ममसादावेदणीयं णाम।

सुख स्वभाव वाले जीव को दुःख का उत्पन्न करने वाला और दुःख के प्रशमन करने में कारणभूत द्रव्यों का अपसारक कर्म असातावेदनीय कहा जाता है। (ध 13/357)

इन्द्रियदुःखकारणविषशस्त्राग्निकण्टकादिद्रव्यप्राप्तिनिमित्तमसातावेद-नीयम्।

इन्द्रिय-दुःख के कारण विष, शस्त्र, अग्नि, कंटक आदि द्रव्यों की प्राप्ति जिसके द्वारा हो, वह असातावेदनीय है। (क.प्र./9)

नारकादिषु गतिषु नानाप्रकारजातिविशेषावकीर्णासु कायिकं बहुविधं मानसं वाऽतिदुःसहं जन्मजरामरणप्रियविप्रयोगऽप्रिय-संयोगव्याधिव-धबन्धादिजनितं दुःखं यस्य फलं प्राणिनां तदसद्वेद्यम्। अप्रशस्तं वेद्यम् असद्वेद्यम्।

जिसके उदय से नाना प्रकार जाति रूप विशेषों से अवकीर्ण नरक आदि गतियों में बहुत प्रकार के कायिक, मानसिक, अतिदुःसह जन्म, जरा, मरण, प्रियवियोग अप्रियसंयोग व्याधि वध और बन्ध आदि से जन्य दुःख का अनुभव होता है वह असाता वेदनीय है, अप्रशस्त वेदनीय असद्वेदनीय है। (रा.वा/8/8)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुःखकरणेन्द्रिय विषयानुभवनं कारयति अरतिमोहनीयोदयबलेन तदसातवेदनीयं।

दुःख के कारणभूत इंद्रियों के विषयों का अनुभव अरति मोहनीय कर्म के उदय से जो कराता है वह असाता वेदनीय कर्म है। (गो.क./जी.प्र. 25)

सातावेदनीयके बन्ध योग्य परिणाम

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य।

भूत-अनुकम्पा, व्रती अनुकम्पा, दान और सराग संयम आदिका योग तथा क्षान्ति और शौच ये साता वेदनीयकर्म के आस्रव हैं। (त.सू. 6/12)

'आदि' शब्देन संयमासंयमाकामनिर्जराबालतपोऽनुरोधः।... इति शब्दः प्रकारार्थः। के पुनस्ते प्रकाराः। अर्हत्पूजाकरणतत्परताबालवृद्धतपस्विवैयावृत्त्यादयः।

सूत्र में सरागसंयम के आगे दिये गये आदि पदसे संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतपका ग्रहण होता है। सूत्र में आया हुआ 'इति' शब्द प्रकारवाची है। वे प्रकार ये हैं, - अर्हन्त की पूजा करने में तत्परता तथा बाल और वृद्ध तपस्वियों की वैयावृत्त्य आदि का करने के द्वारा भी साता वेदनीय का आस्रव होता है। (स.सि. 6/12)

असातावेदनीय के बन्धयोगय परिणाम

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य

अपने में अथवा पर में अथवा दोनों में विद्यमान दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असातावेदनीय कर्म के आस्रव हैं। (त.सू. 6 / 11)

इमे शोकादयः दुःखविकल्पा दुःखविकल्पानामुपलक्षणार्थमुपादीयन्ते, ततोऽन्येषामपि संग्रहो भवति। के पुनस्ते। अशुभप्रयोगपरपरिवाद-पैशुन्य- अनुकम्पाभाव - परपरितापनाङ्गोपाङ्गच्छेदन-भेदन-ताडनत्रासन -तर्जन-भर्त्सन-तक्षण-विशंसन-बन्धन-रोधन-मर्दन- दमन-वाहन-विहेडन-हेपण- कायरौक्ष्य-परनिन्दात्मप्रशंसासंक्लेशप्रादुर्भावनायुर्व-हमानता-निर्दयत्व-सत्त्वव्यपरोपण-महारम्भपरिग्रह- विश्रम्भोपघात-वक्रशीलतापापकर्मजीवित्वाऽनर्थदण्डविषमिश्रण- शरजालपाशवागुरा-पञ्जरयन्त्रोपायसर्जन-बलाभियोग-शस्त्रप्रदान-पापमिश्रभावाः । एते दुःखादयः परिणामा आत्मपरोभयस्था असद्वेद्यस्यास्रवा वेदितव्याः।

उपरोक्त सूत्र में शोकादिका ग्रहण दुःखके विकल्पों के उपलक्षण रूप है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः अन्य विकल्पों का भी संग्रह हो जाता है। वे विकल्प निम्न प्रकार हैं अशुभप्रयोग, परपरिवाद, पैशुन्य पूर्वक अनुकम्पाभाव, परपरिताप, अगोपांगच्छेदन, भेदन, ताड़न, त्रासन, तर्जन, भर्त्सन, तक्षण, विशंसन, बन्धन, रोधन, मर्दन, दमन, वाहन, विहेडन, हेपन, शरीर को रूखा कर देना, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, संकलेशप्रादुर्भाव जीवन को यों ही बरबाद करना, निर्दयता, हिंसा, महाआरम्भ, महापरग्रिह, विश्वासघात, कुटिलता, पापकर्मजीवित्व, अनर्थदण्ड, विषमिश्रण, बाण-जाल पाश, रस्सी, पिंजरा, यन्त्र, आदि हिंसा के साधनों का उत्पादन, जबरदस्ती शस्त्र देना, और दुःखादि पापमिश्रित भाव। ये सब दुःख आदिक परिणाम अपने में, परमें और दोनों में रहने वाले होकर असातावेदनीय के आस्रव के कारण होते हैं।

(रा.वा. 6/11)

अन्येषां यो दुःखमज्ञोऽनुकम्पां त्यक्त्वा तीव्रं तीव्रसंक्लेशयुक्तः। बन्धच्छेदैस्ताडनैर्मारणैश्च दाहै रोधैश्चापि नित्यं करोति। सौख्यं कांक्षन्नात्मनो दुष्टचित्तो नीचो नीचं कर्म कुर्वन्सदैव। पश्चात्तापं तापिना यः प्रयातिबध्यात्येषोऽसा तवेद्यं सदैवम्। रोगाभिभवान्नष्छुबुद्धिचेष्टः कथमेव हितोद्योगं कुर्यात्।

जो मूर्ख मनुष्य दयाका त्याग कर तीव्र संक्लेश परिणामी होकर अन्य प्राणी को बाँधना, ताड़ना, पीटना, प्राण लेना, खाने के और पीने के पदार्थों से वंचित रखना ऐसे ही कार्य हमेशा करता है। ऐसे कार्य में ही अपने को सुखी मानकर जो नीच पुरुष ऐसे ही कार्य हमेशा करता है, ऐसे कार्य करते समय जिनके मन में पश्चात्ताप होतानहीं, उसी को निरन्तर असातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है, जिससे उसका देह हमेशा रोग पीड़ित रहता है, तब उसकी बुद्धि व क्रियाएँ नष्ट होती हैं। वह पुरुष अपने हितका उद्योग कुछ भी नहीं कर सकता। (भ.आ.वि/446)

मोहनीय

मुह्यत इति मोहणीयम्। अथवा मोहयतीति मोहनीयम्।

जो मोहित किया जाता है वह मोहनीय कर्म है। अथवा जो मोहित करता है, वह मोहनीय कर्म है। (ध 6 /11)

आत्मानं मोहयतीति मोहनीयं मद्यवत्।

शराब की तरह जो आत्मा को मोहित करे, वह मोहनीय है। (क.प्र./3)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीयस्य का प्रकृतिः। मद्यपानवद्धेयोपादेयविचारविकलता।

मद्यपान के समान हेय-उपादेय ज्ञान की रहितता, यह मोहनीय कर्म की प्रकृति है। (द्र.सं./टी/33)

श्रद्धानं चारित्रं च यो मोहयति विलोपयति मुह्यतेनेनेति वा स मोहः कर्मविशेषः।

श्रद्धान और चारित्र को जो मोहित करता है - लुप्त करता है अथवा जिसके द्वारा मोहित किया जाता है वह मोह है, मोहकर्म है। (त.वृ. भा. 8/4)

मोहनीय कर्म के भेद

जं तं मोहणीयं कम्म तं दुविहं दंसणमोहणीयं चेव चारित्तमोहणीयं चेव।

वह मोहनीय कर्म दो प्रकार का है - दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय (ध. 6/37)

दर्शनमोहनीय कर्म

अत्तागम पयत्थेसु पच्चओ रुई सद्धा पासो च दंसणं णाम। तस्य मोहयं तत्तो विवरीयभावजणणं दंसणमोहणीयं णाम।

आप्त, आगम और पदार्थों में जो प्रत्यय रुचि, श्रद्धा और दर्शन होता है, उसका नाम दर्शन है। उसको मोहित करने वाला अर्थात् उससे विपरीत भाव को उत्पन्न करने वाला कर्म दर्शनमोहनीय कहलाता है।

(ध. 13/357-358)

जस्स कम्मस्य उदएण अणत्ते अत्तबुद्धी अणागमे आगमबुद्धी अपयत्थे पयत्थबुद्धी अत्तागमपयत्थेसु सद्धाए अत्थिरत्तं, दोसु वि सद्धा वा होदि तं दंसणमोहणीयमिदि उत्तं होदि।

जिस कर्म के उदय से अनाप्त में आप्त बुद्धि और अपदार्थ में पदार्थ बुद्धि होती है अथवा आप्त, आगम और पदार्थों में श्रद्धान की अस्थिरता होती है अथवा दोनों में भी अर्थात् आप्त अनाप्त में आगम अनागम में और पदार्थ अपदार्थ में श्रद्धा होती है। वह दर्शनमोहनीय कर्म है। (ध. 6/38)

दर्शनमोहनीय के भेद

जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बन्धादो एयविहं तस्य संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि।

जो दर्शनमोहनीय कर्म है वह बन्ध की अपेक्षा एक प्रकार का है किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका सत्कर्म तीन प्रकार का है - सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व। (ध. 6/38)

सम्यक्त्व

अत्तागम-पदत्थसद्धाए जस्सोदएण सिथिलत्तं होदि, तं सम्मत्तं।

जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम और पदार्थों की श्रद्धा में शिथिलता होती है वह सम्यक्त्व प्रकृति है। (ध. 6/39)

तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं चलमलिनमगाढं करोति यत्सा सम्यक्त्वप्रकृतिः।

जो तत्त्वार्थ की श्रद्धारूप सम्यग्दर्शन में चल, मलिन तथा अगाढ़ दोष उत्पन्न करे, वह सम्यक्त्वप्रकृति है। (क.प्र./11)

तदेव सम्यक्त्वं शुभपरिणाम निरुद्धस्वरसं यदौदासीन्येनावस्थितमात्मनः श्रद्धानं न निरुणद्धि, तद्वेदयमानः पुरुषः सम्यग्दृष्टिरित्यभिधीयते।

वही मिथ्यात्व जब शुभ परिणामों के कारण अपने स्वरस (विपाक) को रोक देता है और उदासीन रूप से अवस्थित रहकर आत्मा के श्रद्धान को नहीं रोकता है तब सम्यक्त्व (सम्यक्प्रकृति) है। इसका वेदन करने वाला पुरुष सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। (स.सि.8/9)

मिथ्यात्व

जस्सोएदण अत्तागम पयत्थेसु असद्धा होदि, तं मिच्छत्तं।

जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम और पदार्थों में अश्रद्धा होती है। वह मिथ्यात्व प्रकृति है। (ध. 6/39)

यस्योदयात्सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखस्तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम्।

जिसके उदय से यह जीव सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से विमुख, तत्त्वार्थों के श्रद्धान करने में निरुत्सुक, हिताहित का विचार करने में असमर्थ ऐसा मिथ्यादृष्टि होता है वह मिथ्यात्व दर्शन मोहनीय है। (स.सि. 8/9)

सम्यग्मिथ्यात्व

जस्सोदएण अत्तागम पयत्थेसु तप्पडिवक्खेसु य अक्कमेण सद्धा उप्पज्जदि तं सम्मामिच्छत्तं।

जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम और पदार्थों में तथा उनके प्रतिपक्षियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अर्थात् कुदेव, कुशास्त्र और कुत्त्वों में युगपत् श्रद्धा उत्पन्न होती है, वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है। (ध. 6/39)

सम्मत्त मिच्छत्त भावाणं संजोग समुब्भूद भावस्स उप्पाययं कम्मं सम्मामिच्छत्तं णाम।

सम्यक्त्व और मिथ्यात्त्व रूप दोनों भावों के संयोग से उत्पन्न हुए भाव का उत्पादक कर्म सम्यग्मिथ्यात्व कहलाता है। (ध. 13/359)

तत्त्वातत्त्वश्रद्धानकारणं सम्यङ्मिथ्यात्वम्।

जिससे तत्त्व तथा अतत्त्व दोनों का श्रद्धान हो वह सम्यग्मिथ्यात्व है।

(क.प्र./10)

तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात्क्षीणाक्षीणमदशक्ति-कोद्रववत्सामिशुद्धस्वरसं तदुभयमिथ्याख्यायते सम्यङ्मिथ्यात्वमिति यावत्। यस्योदयादात्मनोऽर्धशुद्धमदकोद्रवौदनोपयोगापादित मिश्रपरिणामवदुभयात्मके भवति परिणामः।

वही मिथ्यात्व प्रक्षालन विशेष के कारण क्षीणाक्षीण मदशक्तिवाले कोदों के समान अर्धशुद्ध स्वरसवाला होने पर तदुभय या सम्यग्मिथ्यात्व कहा जाता है। इसके उदय से अर्धशुद्ध मदशक्तिवाले कोदों और ओदन के उपयोग से प्राप्त हुए मिश्रपरिणाम के समान उभयात्मक परिणाम होता है।

(स.सि. 8/9)

चारित्र मोहनीय

पापक्रियानिवृत्तिश्चारित्रम्। घादिकम्माणिपावं। तेसिं किरिया मिच्छत्तासंजमकसाया। तेसिमभावो चारित्तं। तं मोहेइ आवारेदि त्ति चारित्तमोहणीयं।

पापरूप क्रियाओं की निवृत्ति को चारित्र कहते हैं। घातिया कर्मों को पाप कहते हैं। मिथ्यात्व, असंयम और कषाय ये पापकी क्रियाएं है। इन पाप क्रियाओं के अभाव को चारित्र कहते हैं। उस चारित्र को जो मोहित करता है, अर्थात् आच्छादित करता है, उसे चारित्रमोहनीय कहते हैं।

(ध. 6/40)

रागाभावो चारित्तं, तस्स मोहयं तप्पडिवक्खभावुप्पाययं चारित्तमोहणीयं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग का न होना चारित्र है। उसे मोहित करने वाला अर्थात् उससे विपरीत भाव को उत्पन्न करने वाला कर्म चारित्रमोहनीय कहलाता है।

(ध. 13/358).

चरति चर्यतेऽनेनेति चरणमात्रं वा चारित्रं, तन्मोहयति मुह्यतेऽनेनेति चारित्रमोहनीयम्।

जो आचरण करता अथवा जिसके द्वारा आचरण किया जाता है अथवा आचरण मात्र चारित्र है। उसको जो मोहित करता है अथवा जिसके द्वारा मोहित किया जाता है सो चारित्रमोहनीय है। (गो.क./जी.प्र./33)

चारित्रमोहनीय कर्म के भेद

जं तं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं कसायवेदणीयं णोकसाय वेदणीयं चेव।

जो चारित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकार का है-कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। (ध. 13/359)

कषाय

सुख-दुःख सस्य-कर्मक्षेत्रं कृषन्तीति कषायाः।

सुख और दुःख रूपी धान्य को उत्पन्न करने वाले कर्मरूपी क्षेत्र को जो कृषते अर्थात् जोतते हैं वे कषाय हैं। (ध. 13/359)

कषाय इव कषायाः। कः उपमार्थः। यथा कषायो नैयग्रोधादिः श्लेषहेतुस्तथा क्रोधादिरप्यात्मनः कर्मश्लेषहेतुत्वात् कषाय इव कषाय इत्युच्यते।

कषाय अर्थात् 'क्रोधादि' कषाय के समान होने से कषाय कहलाते हैं। उपमारूप अर्थ क्या है ?जिस प्रकार नैयग्रोध आदि कषाय श्लेषका कारण है उसी प्रकार आत्माका क्रोधादिरूप कषाय भी कर्मों के श्लेषका कारण है। इसलिए कषाय के समान यह कषाय है ऐसा कहते हैं। (स.सि. 6/4)

कषायवेदनीयस्योदयादात्मनः कालुष्यं क्रोधादिरूपमुत्पद्यमानं 'कषत्यात्मानं हिनस्ति' इति कषाय इत्युच्यते।

कषायवेदनीय (कर्म) के उदय से होने वाली क्रोधादिरूप कलुषता कषाय कहलाती है ; क्योंकि यह आत्मा के स्वाभाविक रूपको कष देती है अर्थात् उसकी हिंसा करती है। (रा.वा. 2/6)

क्रोधादिपरिणामः कषति हिनस्त्यात्मानं कुगतिप्रापणादिति कषायः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोधादि परिणाम आत्मा को कुगति में ले जाने के कारण कषते हैं ; आत्मा के स्वरूप की हिंसा करते हैं, अतः ये कषाय हैं। (रा.वा. 6/4)

कषाय वेदनीय

जस्स कम्मस्य उदएण जीवो कसायं वेदयदि तं कम्मं कषायवेयणीयं णाम।

जिस कर्म के उदय से जीव कषाय का वेदन करता है वह कषाय वेदनीय कर्म है। (ध. 13/359)

नोकषाय

ईषत्कषायाः नोकषायाः।

ईषत् कषायों को नोकषाय कहा जाता है। (ध. 13/359)

कसाएहिंतो णोकसायाणं कधं थोवत्तं। ट्ठिदीहिंतो अणुभागदो उदयदो य।

प्रश्न -कषायों से नोकषायों के अल्पपना कैसे हैं ? उत्तर - स्थितियों की, अनुभाग की और उदय की अपेक्षा कषायों से नोकषायों के अल्पता पायी जाती है। (ध. 6/46)

इनके ईषत् कसायपना कैसे सो कहे है जैसे श्वान जो कूरता सो स्वामी का सहायका अवलंवनतै बहुत बलवान होई प्राणीनि के मारने में वर्तै है अर स्वामी का सहायका अवलंबन नहीं होई पीछा फिरि आवै। तैसे क्रोधादि कषाय का अवलंबनतै हास्यादिकनिकी प्रवृत्ति होई अर क्रोधादिकषाय की प्रवृत्ति का अभावतै हास्यादिक नहीं प्रवर्तै तातै इनकूं अकषाय कहे।

(अ.प्र. 8/9)

नोकषाय वेदनीय

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो णोकसायं वेदयदि तं णोकसाय वेदणीयं णाम।

जिस कर्म के उदय से जीव नोकषाय का वेदन करता है, वह नोकषाय वेदनीय कर्म है। (ध. 13/359)

कषाय वेदनीय के भेद

जं तं कसायवेदणीयं कम्मं तं सोलहविहं-अणताणुबंधिकोह-माण-माया -लोहं, अपच्चक्खाणावरणीय कोह-माण-माया-लोहं पच्चक्खाणावरणीय कोह-माण-माया-लोहं कोहसंजलणं माणसंजलणं माया संजलणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोहसंजलणं चेदि।

जो कषाय वेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकार का है अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान माया, लोभ प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध मान, माया, लोभ, क्रोध संज्वलन मान संज्वलन, माया संज्वलन और लोभ संज्वलन। (ध. 13/360)

अनन्तानुबंधी (क्रोध मान माया लोभ)

अनन्तान् भवाननुबद्धुं शीलं येषां ते अनन्तानुबन्धिनः। अनंतानुबन्धिनश्च ते क्रोध मान माया लोभाश्च अनंतानुबंधि क्रोध मान माया लोभाः। जेहि कोह माण माया लोहेहि अविणट्ठसरुवेहि सह जीवो अणंते भवे हिंडदि तेसिं कोह-माण-माया-लोहाणं अणंताणुबंधी सण्णा।

अनन्त भवों को बांधना ही जिनका स्वभाव है वे अनन्तानुबंधी कहलाते हैं। अनंतानुबंधी जो क्रोध, मान, माया लोभ होते हैं वे अनंतानुबंधी क्रोध,मान, माया, लोभ कहलाते हैं। जिन अविनष्ट स्वरूप वाले, अर्थात् अनादि परम्परागत क्रोध, मान, माया और लोभ के साथ जीव अनंत भव में परिभ्रमण करता है, उन क्रोध, मान, माया और लोभ कषायों की अनन्तानुबंधी संज्ञा है। (ध. 6/41)

सम्मद्दंसण - चारित्ताणं विणासया कोह माण माया लोहा अणंत भवाणुबंधणसहावा अणंताणुबंधिणो णाम। अणंतेसु भवेसु अणुबंधो जेसिं ते वा अणंताणुबंधिणो भण्णंति।

जो क्रोध, मान, माया और लोभ सम्यग्दर्शन व सम्यक् चारित्र का विनाश करते हैं तथा जो अनन्त भव के अनुबंधन स्वभाव वाले होते हैं वे अनन्तानुबंधी कहलाते हैं। अथवा अनंत भवों में जिनका अनुबंध चला जाता है, वे अनंतानुबंधी कहलाते हैं। (ध. 13/360)

अनन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यादर्शनमनन्तम्। तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः।

अनन्त संसार का कारण होने से मिथ्यादर्शन अनन्त कहलाता है तथा जो कषाय उसके अर्थात् अनन्त के अनुबन्धी हैं वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। (स.सि. 8/9)

अप्रत्याख्यान (क्रोध, मान, माया लोभ)

अप्रत्याख्यानं संयमासंयमः। तमावृणोतीति अप्रत्याख्यानावरणीयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं च उव्विहं कोह-माण-माया-लोहभेएण।

अप्रत्याख्यान संयमासंयम का नाम है उस अप्रत्याख्यान को जो आवरण करता है उसे अप्रत्याख्यानावरणीय कहते हैं। वह क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से चार प्रकार का है। (ध. 6/44)

यदुदयाद्देशविरति संयमासंयमाख्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति ते देशप्रत्याख्यानमावृण्वन्तोऽप्रत्याख्यानावरणाः क्रोध मान माया लोभाः ।

जिनके उदय से जिसका दूसरा नाम संयमासंयम है ऐसी देशविरति को यह जीव स्वल्प भी करने में समर्थ नहीं होता है वे देशप्रत्याख्यान को आवृत करने वाले अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ हैं।

(स.सि. 8/9)

प्रत्याख्यान (क्रोध, मान, माया लोभ)

पच्चक्खाणं संजमो महव्वयाइं ति एयट्ठो। पच्चक्खाणमावरेंति त्ति पच्चखाणावरणीया कोह-माण-माया-लोहा।

प्रत्याख्यान, संयम और महाव्रत, ये तीनों एक अर्थ वाले नाम हैं। प्रत्याख्यान को जो आवरण करते हैं वे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभकषाय कहलाते हैं। (ध 6/ 44)

यदुदयाद्विरतिं कृत्स्नां संयमाख्यां न शक्नोति कर्तुं ते कृत्स्नं प्रत्याख्यानमावृण्वन्तः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः।

जिनके उदय से संयम नामवाली परिपूर्ण विरति को यह जीव करने में समर्थ नहीं होता है वे सकल प्रत्याख्यान को आवृत करने वाले प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान,माया और लोभ हैं। (स.सि. 8/9)

संज्वलन (क्रोध, मान, माया लोभ)

सम्यक् ज्वलतीति संज्वलनम्। चारित्रेण सहज्वलनम्। चारित्रमविणासेंता उदयं कुणंति। संजमम्हि मलमुप्पाइय जहाक्खादचारित्तुप्पत्ति पडिबंधयाणं चारित्तावरणत्ताविरोहा। ते वि चत्तारि कोह-माण-माया-लोह-भेदेण।

जो सम्यक् प्रकार जलता है , उसे संज्वलन कहते हैं। चारित्र के साथ जलना ही इसका सम्यक्पना है . अर्थात् चारित्र को नहीं विनाश करते हुए ये कषाय उदय को प्राप्त होती है। संज्वलन कषाय संयम में मलको उत्पन्न करके यथाख्यात चारित्र की उत्पत्ति के प्रतिबंधक होती है क्रोध, मान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माया और लोभ के भेद से इसके चार प्रकार हैं। (ध. 6/44)

संयमेन सहावस्थानादेकीभूय ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः।

संयम के साथ अवस्थान होने में एक होकर जो ज्वलित होते हैं अर्थात् चमकते हैं या जिनके सद्भाव में संयम चमकता रहता है वे संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ हैं । (स.सि. 8/9)

नोकषाय वेदनीय के भेद

जं तं णोकसायवेदणीयं कम्मं तं णवविहं, इत्थिवेदं पुरिसवेदं णवुंसयवेदं हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा चेदि।

जो नोकषाय वेदनीय कर्म है वह नौ प्रकार का है - स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा। (ध 6 /45)

स्त्रीवेद

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण पुरुसम्मि आकंखा उप्पज्जइ तेसिमित्थिवेदो त्ति सण्णा।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से पुरुष में आकांक्षा उत्पन्न होती है उन कर्म स्कंधों की 'स्त्रीवेद' यह संज्ञा है। (ध. 6/47)

यतः स्त्रियमात्मानं मन्यमानः पुरुषे वेदयति रन्तुमिच्छति सः स्त्रीवेदः।

जिसके कारण अपने को स्त्री मानता हुआ पुरुष में रमण करने की इच्छा करता है, वह स्त्रीवेद है। (क.प्र./15)

यदुदयात्स्त्रैणान्भावान्प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः।

जिसके उदय से स्त्री सम्बन्धी भावों को प्राप्त होता है वह स्त्रीवेद है।

(स.सि. 8/9)

यस्योदयात् स्त्रैणान्भावान्मार्दवक्लैव्यमदनावेशनेत्रविभ्रमास्फालन सुख पुंस्कामनादीन्प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः।

जिसके उदय से स्त्री सम्बन्धी मार्दव, भयभीतता, कामावेश, नेत्र मटकाना, पुरुष को चाहना इत्यादि भाव प्रकट होते हैं वह स्त्री वेद कर्म है।

(त.वृ. भा. 8/9)

श्रोणिमार्दवभीतत्वमुग्धत्वक्लीबतास्तनाः।
पुंस्कामेन समं सप्त लिङ्गानि स्त्रैणसूचने ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योनि, कोमलता, भयशील होना, मुग्धपना, पुरुषार्थशून्यता, स्तन और पुरुषभोग की इच्छा ये सात भाव स्त्रीवेद के सूचक हैं। (त.वृ. श्रु. 8/9)

पुरुषवेद

जस्स कम्मस्स उदएण मणुस्सस्स इत्थीसु अहिलासो उप्पज्जदि तं, कम्मं पुरिसवेदो णाम।

जिस कर्म के उदय से मनुष्य की स्त्रियों में अभिलाषा उत्पन्न होती है वह पुरुष वेद है। (ध. 13/361)

यतः पुमांसमात्मानं मन्यमानः स्त्रियां वेदयति रन्तुमिच्छति सः पुंवेदः।

जिसके कारण अपने को पुरुष मानता हुआ स्त्री में रमण करने की इच्छा करता है, वह पुंवेद है। (क.प्र./15)

यस्योदयात्पौंस्नान्भावानास्कन्दति स पुंवेदः।

जिसके उदय से पुरुष सम्बन्धी भावों को प्राप्त होता है वह पुंवेद (पुरुष-वेद) है। (स.सि. 8/9)

खरत्वं मोहनं स्ताब्ध्यं शौंडीर्यं श्मश्रुघृष्टता।
स्त्री कामेन समं सप्त लिङ्गानि नरवेदने ॥

लिंग, कठोरता, स्तब्धता, शौण्डीरता, दाड़ी-मूंछ, जबर्दस्तपना और स्त्री -भोगेच्छा, ये सात पुंवेद के सूचक हैं। (त.वृ. श्रु. 8/9)

नपुंसकवेद

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण इट्टावागग्गिसरिच्छेण दोसु वि आकंखा उप्पज्जइ तेसिं णउंसगवेदो त्ति सण्णा।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से ईटों के अवा की अग्नि के समान स्त्री और पुरुष इन दोनों पर भी आकांक्षा उत्पन्न होती है उनकी 'नपुंसकवेद' यह संज्ञा है। (ध. 6/47)

यतो नपुंसकमात्मानं मन्यमानः स्त्रीपुंसोर्वेदयति रन्तुमिच्छति स नपुंसकवेदः।

जिसके कारण अपने को नपुंसक मानता हुआ स्त्री और पुरुष दोनों में रमण करने की इच्छा करता है, वह नपुंसकवेद है। (क.प्र./15)

यदुदयान्नापुंसकान्भावानुपव्रजति स नपुंसकवेदः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसके उदय से नपुंसक सम्बन्धी भावों को प्राप्त होता है वह नपुंसकवेद है।
(स.सि. 8/9)

यानि स्त्रीपुंसलिङ्गानि पूर्वाणीति चतुर्दश।
शक्तानि तानि मिश्राणि षण्ढभावनिवेदने।

स्त्रीवेद और पुरुषवेद के सूचक चौदह चिह्न मिश्रित रूप में नपुंसकवेद के सूचक हैं। (त.वृ. श्रु. 8/9)

हास्य

हसनं हासः। जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण हस्सणिमित्तो जीवस्स रागो उप्पज्जइ, तस्स कम्मक्खंधस्स हस्सो त्ति सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो।

हंसने को हास्य कहते हैं। जिस कर्म स्कंध के उदय से जीव के हास्य निमित्तक राग उत्पन्न होता है, उस कर्म स्कंध की कारण में कार्य के उपचार से 'हास्य' यह संज्ञा है। (ध. 6/47)

जस्स कम्मस्स उदएण अणेयविहो हासो सपुप्पज्जदि तं कम्मं हस्सं णाम।

जिस कर्म के उदय से अनेक प्रकार का परिहास उत्पन्न होता है, वह हास्य कर्म है। (ध. 13/361)

यतो हासो भवति तद्धास्यम्।

जिससे हँसी आये, वह हास्य प्रकृति है। (क.प्र./13)

यस्योदयाद्धास्याविर्भावस्तद्धास्यम्।

जिसके उदय से हँसी आती है वह हास्य है। (स.सि. 8/9)

हास्यं वर्करादिस्वरूपं यदुदयादाविर्भवति तद्धास्यम्।

जिसके उदय से वर्करादि (आमोद, मनोरंजन) स्वरूप हँसी आती है, वह हास्य है। (त.वृ. श्रु. 8/9)

रति

रमणं रतिः, रम्यते अनया इति वा रतिः। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु रदी समुप्पज्जइ, तेसिं रदि त्ति सण्णा।

रमने को रति कहते हैं अथवा जिसके द्वारा जीव विषयों में आसक्त होकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रमता है उसे रति कहते हैं। जिन कर्म स्कन्धों के उदय से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों में राग उत्पन्न होता है, उनकी 'रति' यह संज्ञा है।

(ध. 6/47)

नप्तृ-पुत्र-कलत्रादिषु रमणं रतिः।

नाती, पुत्र एवं स्त्री आदिको में रमण करने का नाम रति है। (ध 12/285)

यतो रमयति सा रतिः।

जिसके कारण रमे (प्रसन्न हो), वह रति है। (क.प्र. /14)

यदुदयाद्देशादिष्वौत्सुक्यं सा रतिः।

जिसके उदय से देशादि में उत्सुकता होती है वह रति है। (स.सि. /8/9)

मनोज्ञेषु वस्तुषु परमा प्रीतिरेव रतिः।

मनोहर वस्तुओं में परम प्रीति सो रति है। (नि.सा./ता.वृ/6)

यदुदयाद्देशपुरग्राममन्दिरादिषु तिष्ठन् जीवः परदेशादिगमने च औत्सुक्यं न करोति सा रतिरुच्यते।

जिसके उदय से देश, पुर, ग्राम, मन्दिर आदि में रहता हुआ जीव दूसरे देशादि में जाने के लिये उत्सुक नहीं होता है वह रति कहलाती है।

(त.वृ. श्रु. 8/9)

रमयतेऽनयेति रमणं वा रति ; कुत्सिते रमते येषां कर्मस्कन्धानामुदयेन द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु रतिरुत्पद्यते तेषां रतिरिति संज्ञा।

यातैं रमणा सो रति रमिये जाकरि वा कुत्सित अर्थ विषैं रमे जाकरि रति। जिन कर्म्म स्कंधनि के उदय करि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषैं रति उपजै तिनकी रति ऐसी संज्ञा है। (मू. 12/192)

अरति

दव्व खेत्त काल भावेसु जेसिमुदएण जीवस्य अरई समुप्पज्जइ तेसिमरदि त्ति सण्णा।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों में जीव के अरुचि उत्पन्न होती है, उनकी 'अरति' यह संज्ञा है। (ध. 6/47)

यतो विषण्णो भवति सारतिः।

जिसके कारण विषण्ण (खिन्न) हो, वह अरति है। (क.प्र./14)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदुदयाद्देशादिष्वौत्सुक्यं सा रतिः। अरतिस्तद्विपरीता।

जिसके उदय से देश आदि में उत्सुकता होती है वह रति है। अरति इससे विपरीत है। (स.सि. 8/9)

शोक

शोचनं शोकः, शोचयतीति वा शोकः। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्स सोगो समुप्पज्जइ तेसिं सोगो त्ति सण्णा।

सोच करने को शोक कहते हैं। अथवा जो विषाद उत्पन्न करता है, उसे शोक कहते हैं। जिन कर्म स्कंधों के उदय से जीव के शोक उत्पन्न होता है उनकी 'शोक' संज्ञा है। (ध. 6/47-48)

यतः शोचयति रोदयति स शोकः।

जिसके कारण शोक करे, वह शोक है। (क.प्र./14)

यद्विपाकाच्छोचनं स शोकः।

जिसके उदय से शोक होता है वह शोक है। (स.सि. 8/9)

भय

भीतिर्भयम्। जेहिं कम्मक्खंधेहिं उदयमागदेहि जीवस्स भयमुप्पज्जइ तेसिं भयमिदि सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो।

भीति को भय कहते हैं। उदय में आये हुए जिन कर्म स्कंधों के द्वारा जीव के भय उत्पन्न होता है उनकी कारण में कार्य के उपचार से 'भय' यह संज्ञा है। (ध. 6/48)

जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स सत्त भयाणि समुप्पज्जंति तं कम्मं भयं णाम।

जिस कर्म के उदय से जीव के सात प्रकार का भय उत्पन्न होता है, वह भय कर्म है। (ध. 13/361)

परचक्कागमादओ भयं णाम।

पर चक्र के आगमनादिका नाम भय है। (ध.13 /336)

यतो बिभेत्यनर्थात्तद्भयम्।

जिसके कारण अनर्थ से डरे, वह भय है। (क.प्र./14)

यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसके उदय से उद्वेग होता है वह भय है। (स.सि. 8/9)

यदुदयात् त्रासलक्षण उद्वेग उप्पद्यते तद् भयमुच्यते।

जिसके उदय से त्रास लक्षण उद्वेग उत्पन्न होता है वह भय कहलाता है।

(त.वृ.श्रु. 8 /9)

जुगुप्सा

जुगुप्सनं जुगुप्सा। जेसिं कम्माणमुदएण दुगुंछा उप्पज्जदि तेसिं दुगुंछा इदि सण्णा।

ग्लानि होने को जुगुप्सा कहते हैं। जिन कर्मो के उदय से ग्लानि उत्पन्न होती है, उनकी 'जुगुप्सा' यह संज्ञा है। (ध. 6/48)

जस्स कम्मस्स उदएण दव्व खेत्तकाल भावेसु चिलिसा समुप्पज्जदि तं कम्मं दुगंछा णाम।

जिस कर्म के उदय से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में विचिकित्सा उत्पन्न होती है वह जुगुप्सा कर्म है। (ध. 13/361)

यतो जुगुप्सा सा जुगुप्सा

जिसके कारण घृणा आये, वह जुगुप्सा है। (क.प्र./14)

यदुदयादात्मदोषसंवरणं परदोषाविष्करणं सा जुगुप्सा।

जिसके उदय से आत्मदोषों का संवरण और परदोषों का आविष्करण होता है वह जुगुप्सा है। (स.सि. 8/9)

कुत्साप्रकारो जुगुप्सा। ....आत्मीयदोषसंवरणं जुगुप्सा, परकीयकुल-शीलादिदोषाविष्करणावक्षेपणभर्त्सनप्रवणा कुत्सा।

कुत्सा या ग्लानि को जुगुप्सा कहते हैं। तहाँ अपने दोषों को ढाँकना जुगुप्सा है, तथा दूसरे के कुल-शील आदि में दोष लगाना, आक्षेप करना भर्त्सना करना कुत्सा है। (रा.वा.8/9)

स्वदोषगोपनं यस्य जुगुप्सा सा जुगुप्सिता।

जिसके उदय से अपने दोष छिपाने में प्रवृत्ति हो वह जुगुप्सा है।

(ह.पु. 58/236)

दर्शनमोहनीय के बन्ध योग्य परिणाम

केवलिश्रुतसंघधर्म देवा वर्णवादो दर्शनमोहस्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है। (त.सू. 6/13)

मार्गसंदूषणं चैव तथैवोन्मार्गदेशनम्।

सत्य मोक्षमार्ग को दूषित ठहराना और असत्य मोक्षमार्ग को सच्चा बताना ये भी दर्शनमोह कर्म के आस्रव के कारण हैं। (त.सा. 4/28)

कषायवेदनीय के बन्धयोग्य परिणाम

स्वपरकषायोत्पादनं तपस्विजनवृत्तदूषणं संक्लिष्टलिङ्गव्रतधारणादिः कषायवेदनीयस्यास्रवः।

स्वयं कषाय करना, दूसरों में कषाय उत्पन्न करना, तपस्वीजनों के चारित्र में दूषण लगाना, संक्लेशको पैदा करने वाले लिंग (वेष) और व्रत को धारण करना आदि कषायवेदनीय के आस्रव हैं। (स.सि. 6/14)

जगदनुग्रहतन्त्रशीलव्रतभावितात्मतपस्विजनगर्हण-धर्मविध्वसंन तदन्तरायकरणशीलगुणदेशसंयतविरतिप्रच्यावनमधुमद्यमांसविरतचित्तविघ्नमापादन- वृत्तसंदूषण-संक्लिष्टलिंगव्रतधारणस्वपरकषायोत्पादनादिलक्षणः कषायवेदनीयस्यास्रवः।

जगत उपकारी शीलव्रती तपस्वियों की निन्दा, धर्मध्वंस, धर्ममें अन्तराय करना, किसी को शीलगुण देशसंयम और सकलसंयम से च्युत करना, मद्य मांस आदि से विरक्त जीवों को उसमें बिचकाना, चारित्रदूषण, संक्लेशोत्पादक व्रत और वेषों का धारण, स्व और पर में कषायों का उत्पादन आदि कषायवेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं। (रा.वा. 6/14)

अकषायवेदनीय के बन्धयोग्य परिणाम

उत्प्रहासादीनामिहासित्व - कन्दर्पोपहसनबहुप्रलापोपहासशीलता हास्यवेदनीयस्य। विचित्रपरक्रीडन - परसौचित्यावर्जन - बहुविधपीड़ाभाव देशाद्यनौत्सुक्यप्रीतिसंजननादिः रतिवेदनीयस्य। पररतिप्रादुर्भावन-रतिविनाशन - पापशीलसंसर्गताऽकुशलक्रिया-प्रोत्साहनादिः अरतिवेदनीयस्य। स्वशोकाऽमोदशोचनपरदुःखाविष्करण शोकप्लुताभिनन्दनादिः शोकवेदनीयस्य। स्वयं भयपरिणामपरभयोत्पादन - निर्दयत्व- त्रासनादिर्भयवेदनीयस्य। सद्धर्मापन्नचतुर्वर्णविशिष्टवर्गकुलक्रियाचारप्र-वणजुगुप्सा परिवादशीलत्वादिर्जुगुप्सावेदनीयस्य। प्रकृष्टकोधपरिणामातिमानितेर्ष्याव्यापारालीकाभिधायिताऽ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिसन्धानपरत्व- प्रवृद्धराग - पराङ्गनागमनादर वामलोचनाभावा-भिष्वङ्गतादिः स्त्रीवेदस्य। स्तोकक्रोध जैह्मनिवृत्त्यनुत्सिक्तत्वा ऽलोभभा-वाऽङ्गनासमवायाल्परागत्व-स्वदारसंतोषेर्ष्याविशेषोपरमस्ना-नगन्धमाल्याभरणानादरादिः पुंवेदनीयस्य। प्रचुरक्रोधमानमायालोभ-परिणाम - गुह्येन्द्रियव्यपरोपण-स्त्रीपुंसानङ्गव्यसनित्व शीलव्रतगुण-धारिप्रव्रज्याश्रितप्रम (मै) थन पराङ्गनावस्कनन्दनरागतीव्रानाचारादि-र्नपुंसकवेदनीयस्य।

उत्प्रहास, बहुत जोर से हसना, दीनतापूर्वक हँसी, कामविकार पूर्वक हँसी, बहुप्रलाप तथा हरएक की हँसी मजाक करना हास्यवेदनीय के आस्रव के कारण हैं। विचित्र क्रीड़ा, दूसरे के चित्तको आकर्षण करना, बहुपीड़ा, देशादिके प्रति अनुत्सुकता, प्रीति उत्पन्न करना रतिवेदनीय के आस्रव के कारण हैं। रति विनाश, पापशील व्यक्तियों की संगति, अकुशल क्रिया को प्रोत्साहन देना आदि अरतिवेदनीय के आस्रव के कारण हैं। स्वशोक, प्रीति के लिए परका शोक करना, दूसरों को दुःख उत्पन्न करना, शोक से व्याप्त का अभिनन्दन आदि शोकवेदनीय के आस्रव के कारण हैं। स्वयं भयभीत रहना, दूसरों को भय उत्पन्न करना, निर्दयता, त्रास आदि भयवेदनीय के आस्रव के कारण हैं। धर्मात्मा चतुर्वर्ण विशिष्ट वर्ग कुल आदि की क्रिया और आचार में तत्पर पुरुषों से ग्लानि करना, दूसरे की बदनामी करने का स्वभाव आदि जुगुप्सावेदनीय के आंस्रव के कारण हैं। अत्यन्त क्रोध के परिणाम, अतिमान, अत्यन्त ईर्ष्या, मिथ्याभाषण, छल कपट, तीव्रराग, परांगनागमन, स्त्रीभावों में रुचि आदि स्त्रीवेद के आस्रव के कारण हैं। मन्दक्रोध, कुटिलता न होना, अभिमान न होना, निलोर्भ भाव, अल्पराग, स्वदारसन्तोष ईर्ष्या-रहित भाव, स्नान, गन्ध, माला, आभरण आदि के प्रति आदर न होना आदि पुंवेद के आस्रव के कारण हैं। प्रचुर क्रोध मान माया लोभ, गुप्त इन्द्रियों का विनाश, स्त्री पुरुषों में अनङ्गक्रीड़ा का व्यसन, शीलव्रत गुणधारी और दीक्षाधारी स्त्री पुरुषों को बिचकाना, परस्त्री पर आक्रमण, तीव्र राग, अनाचार आदि नपुंसकवेद के आस्रव के कारण हैं।

(रा.वा. 6/14)

आयु

एति भवधारणं प्रति इत्यायुः। जे पोग्गला मिच्छत्तादिकारणेहि णिरया-दिभवधारणसत्ति परिणदा जीवणिविट्ठा ते आउअ सण्णिदा होंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो भवधारण के प्रति जाता है वह आयुकर्म है। जो पुद्गल मिथ्यात्व आदि बंधकारणों के द्वारा नरक आदि भव-धारण करने की शक्ति से परिणत होकर जीव में निविष्ट होते हैं, वे 'आयु' इस संज्ञा वाले होते हैं।

(ध. 6/12)

शरीर आत्मानमेति धारयतीत्यायुष्यं श्रृङ्खलावत्।

श्रृंखलाकी तरह जो शरीर में आत्मा को रोक रखता है, वह आयु कर्म है।

(क.प्र./3)

एत्यनेन नारकादिभवमित्यायुः।

जिसके द्वारा नारक आदि भव को जाता है वह आयुकर्म है। (स.सि. 8/4)

यस्य भावात् आत्मनः जीवितं भवति यस्य चाभावात् मृत इत्युच्यते तद्भवधारणमायुरित्युच्यते।

जिसके सद्भाव में जीवन और अभाव में मरण हो, वह आयु है। जिसके होने पर आत्मा का जीवन और जिसके अभाव में आत्मा का मरण कहलाता है। वह भव-धारण में कारण आयु है अर्थात् जो नरकादि भवों में रोककर रखे, उसे आयु कहते हैं। (रा.वा 8/10)

कम्मकयमोहवड्ढियसंसारम्हि य अणादिजुत्तेहि।
जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलिव्व णरं ॥

आयु कर्म का उदय है सो कर्मकरि किया अर अज्ञान, असंयम, मिथ्यात्व करि वृद्धि को प्राप्त भया ऐसा अनादि संसार तावि्षैं च्यारि गतिनि मैं जीव अवस्थान को करै है। जैसे काष्ठका खोड़ा अपने छिद्र में जाका पग आया होय ताकि तहाँ ही स्थिति करावै तैसे आयुकर्म जिस गति सम्बन्धी उदय रूप होइ तिस गति विषै जीव की स्थिति करावै हैं। (गो.क.मू. 11)

विशेष-शंका- उस आयुकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान - देहकी स्थिति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्तिसे आयुकर्म का अस्तित्व जाना जाता है। (ध. 6/12-13)

आयुकर्म के भेद

आउगस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ। णिरयाऊ तिरिक्खाऊ मणुस्साऊ देवाऊ चेदि।

आयुकर्म की चार प्रकृतियाँ हैं - नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु।

(ध. 6/48)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकायु

जं कम्मं णिरयभवं धारेदि तं णिरयाउअं णाम।

जो कर्म नरक भव को धारण कराता है, वह नारकायु कर्म है। (ध. 13/362)

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्य उद्धगमणसहावस्स णेरइयभवम्मि अवट्ठाणं होदि तेसिं णिरयाउवमिदि सण्णा।

जिन कर्म स्कन्धों के उदय से ऊर्ध्वगमन स्वभावाले जीव का नारक भव में अवस्थान होता है, उन कर्म स्कंधों की 'नरकायु' यह संज्ञा है। (ध. 6/48)

तत्र यन्नारकशरीरे आत्मानं धारयति तन्नारकायुष्यम्।

जो आत्मा को नारक शरीर में धारण कराता है, वह नरकायुष्य है।

(क.प्र./16)

नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु यन्निमित्तं दीर्घजीवनं तन्नारकम्।

तीव्र शीत और उष्ण वेदनावाले नरकों में जिसके निमित्त से दीर्घ जीवन होता है। वह नारक आयु है। (स.सि. 8/10)

तिर्यंचायु

जं कम्मं तिरिक्खभवं धारेदि तं तिरिक्खाउअं णाम।

जो कर्म तिर्यञ्च भव को धारण कराता है, वह तिर्यंचायु कर्म है।(ध. 13/362)

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण तिरिक्खभवस्स अवट्ठाणं होदि तेसिं तिरिक्खाउअमिदि सण्णा।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से तिर्यंच भव में जीव का अवस्थान होता है, उन कर्म स्कंधों की 'तिर्यगायु' यह संज्ञा है। (ध. 6/49)

यत्तिर्यक्छरीरे जीवं धारयति तत्तिर्यगायुष्यम्।

जो जीव को तिर्यंच-शरीर में धारण कराता है, वह तिर्यगायुष्य है।

(क.प्र./16)

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंसमशकादिविविधवेदनाविधेयीकृतेषु तिर्यक्षु यस्योदयाद्वसनं भवति तत्तैर्यग्योनमायुरवगन्तव्यम्।

भूख, प्यास, शीत, उष्ण, दंशमशक आदि विविध वेदनाओं के स्थान स्वरूप तिर्यंचों में जिसके उदय से रहना पड़ता है वह तिर्यंच आयुकर्म है।

(त.वृ. भा.8/10)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यायु

जं कम्मं मणुसभवं धारेदि तं मणुसाउअं णाम ।

जो कर्म मनुष्य भव को धारण कराता है, वह मनुष्यायु कर्म है।

(ध. 13/362)

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण मणुस्स भवस्स अवट्ठाण होदि तेसिं मणुस्साउअमिदि सण्णा।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से मनुष्य भव में जीव का अवस्थान होता है, उन कर्म स्कंधों की 'मनुष्यायु' यह संज्ञा है। (ध. 6/49 आ)

यन्मनुष्यशरीरे प्राणिनं धारयति तन्मनुष्यायुष्यम्।

जो प्राणी को मनुष्य-शरीर में धारण कराता है, वह मनुष्यायुष्य है।

(क.प्र./16)

शरीरेण मानसेन च सुखदुःखेन समाकुलेषु मनुष्येषु यस्योदयाज्जन्म भवति तन्मानुषमायुरवसेयम्।

शारीरिक मानसिक सुख और दुःखों से व्याप्त मनुष्यों में जिसके उदय से जन्म होता है वह मानुष आयु कर्म है। (त.वृ. भा.8/10)

देवायु

जं कम्मं देवभवं धारेदि तं देवाउअं णाम।

जो कर्म देव भव को धारण कराता है, वह देवायु कर्म है। (ध. 13/362)

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण देवस्सभवस्स अवट्ठाणं होदि तेसिं देवाउ-अमिदि सण्णा।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से देव भव में जीव का अवस्थान होता है, उन कर्म स्कंधों की 'देवायु' यह संज्ञा है। (ध. 6/49 आ)

यद्देवशरीरे देहिनं धारयति तद्देवायुष्यम्।

जो प्राणी को देव-शरीर में धारण कराता है, वह देवायुष्य है। (क.प्र./16)

शारीरेण मानसेन च सुखेन प्रायः समाविष्टेषु देवेषु यस्योदयाज्जन्म भवति तद्दैवमायुरवबोद्धव्यम्।

शारीरिक और मानसिक सुखों से प्रायः भरपूर भरे हुए देवों में जिसके उदय से जन्म होता है वह देवायु कर्म है। (त.वृ. भा.8/10)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकायु सामान्य के बन्ध योग्य परिणाम

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः। निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ।

बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रहपने का भाव नरकायु का आस्रव है। शीलरहित और व्रतरहित होना सब आयुओं के आस्रव का कारण है।

(त.सू. 6/15,19)

हिंसादिक्रूरकर्माजस्रप्रवर्तनपरस्वहरणविषयातिगृद्धिकृष्णलेश्याभिजा-तरौद्रध्यानमरणकालतादिलक्षणो नारकस्यायुष आस्रवो भवति।

हिंसादिक्रूर कार्यों में निरन्तर प्रवृत्ति, दूसरे के धनका हरण, इन्द्रियों के विषयों में अत्यन्त आसक्ति, तथा मरने के समय कृष्णलेश्या और रौद्रध्यान आदिका होना नरकायु के आस्रव हैं। (स.सि. 6/15)

आउस्स बंधसमए सिलोव्व सेलो वेणूमूले य ।
किमिरायकसायाणं उदयम्मि बंधेदि णिरयाउ ॥
किणअहाय णीलकाऊणुदयादो बंधिऊण णिरयाऊ।
मरिऊण ताहिं जुत्तो पावइ णिरयं महाघोरं ॥

आयु बन्ध के समय सिल की रेखा के समान क्रोध, शैलके समान मान, बाँस की जड़के समान माया, और कृमिराग के समान लोभ कषाय का उदय होने पर नरक आयु का बन्ध होता है। कृष्ण नील अथवा कापोत इन तीन लेश्याओं का उदय होने से नरकायु को बांध कर और मरकर उन्हीं लेश्याओं से युक्त होकर महाभयानक नरकको प्राप्त करता है। (ति.प. 2/295,294)

उत्कृष्टमानता शैलराजीसदृशरोषता ।
मिथ्यात्वं तीव्रलोभत्वं नित्यं निरनुकम्पता॥
अजस्रं जीवघातित्वं सततानृतवादिता ।
परस्वहरणं नित्यं नित्यं मैथुनसेवनम् ॥
कामभोगाभिलाषाणां नित्यं चातिप्रवृद्धता ।
जिनस्यासादनं साधुसमयस्य च भेदनम् ॥
मार्जारताम्रचूड़ादिपापीयः प्राणिपोषणम् ।
नैः शील्यं च महारम्भपरिग्रहतया सह ॥
कृष्णलेश्यापरिणतं रौद्रध्यानं चतुर्विधम् ।
आयुषो नारकस्येति भवन्त्यास्रवहेतवः ॥

कठोर पत्थर के समान तीव्रमान, पर्वतमालाओं के समान अभेद्य क्रोध रखना,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टि होना, तीव्र लोभ होना, सदा निर्दयी बने रहना, सदा जीवघात करना, सदा ही झूठ बोलने में प्रेम मानना, सदा परधन हरने में लगे रहना, नित्य मैथुन सेवन करना. काम भोगों की अभिलाषा सदा ही जाज्वल्यमान रखना, जिन भगवान की आसादना करना, साधु धर्म का उच्छेद करना, बिल्ली, कुत्ते , मुर्गे इत्यादि पापी प्राणियों को पालना, शीलव्रत रहित बने रहना और आरम्भ परिग्रह को अति बढ़ाना, कृष्ण लेश्या रहना, चारों रौद्रध्यान में लगे रहना, इतने अशुभ कर्म नरकायु के आस्रव के हेतु हैं। अर्थात् जिन कर्मों को क्रूरकर्म कहते हैं और जिन्हें व्यसन कहते हैं, वे सभी नरकायु के कारण हैं । (त.सा. 4/30,34)

मिच्छेहु महारंभो णिस्सीलो तिव्वलोहसंजुत्तो।
णिरयाउगं णिबंधइ पावमई रुद्दपरिणामी ॥

जो जीव मिथ्यातमरूप मिथ्यादृष्टि होइ, बहुत आरंभी होइ, शील रहित होई, तीव्र लोभ संयुक्त होइ, रौद्र परिणामी होइ, पाप कार्य विषैं जाकी बुद्धि होइ सो जीव नरकायु को बाँधै है। (गो.क.मू. 804)

नरकायु विशेष के बन्धयोग्य परिणाम

धम्मदयापरिचत्तो अमुक्कवइरो पयंडकलहयरो।
बहुकोही किण्हाए जम्मदि धूमादि चरिमंते ॥
बहुसण्णा णीलाए जम्मदि तं चेव धूमंतं ।
काऊए संजुत्तो जम्मदि धम्मादिमेघंतं ॥

दया धर्म से रहित, वैरको न छोड़ने वाला, प्रचंड कलह करने वाला और बहुत क्रोधी जीव कृष्ण लेश्या के साथ धूमप्रभा से लेकर अन्तिम पृथ्वी तक जन्म लेता है। आहारादि चारों संज्ञाओं में आसक्त ऐसा जीव नील लेश्या के साथ धूमप्रभा पृथ्वी तक जन्म लेता है। कापोत लेश्या से संयुक्त होकर धर्मा से लेकर मेघा पृथ्वी तक में जन्म लेता है।

(ति.प. 2/297-299, 302)

कर्मभूमिज तिर्यंच आयु के बन्धयोग्य परिणाम

माया तैर्यग्योनस्य।

माया तिर्यंचायुका आस्रव है। (त.सू. 6/16)

मिथ्यात्वोपेतधर्मदेशना निःशीलतातिसन्धानप्रियता नीलकापोतलेश्यार्तध्यानमरणकालतादिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मोपदेश में मिथ्या बातों को मिलाकर उनका प्रचार करना, शीलरहित जीवन बिताना, अतिसंधानप्रियता तथा मरण के समय नील व कापोत लेश्या और आर्त ध्यान का होना आदि तिर्यचायु के आस्रव हैं।

(स.सि. 6/16)

मिथ्यात्वोपष्टम्भाऽधर्मदेशनाऽनल्पारम्भपरिग्रहाऽतिनिकृतिकूट-कर्माऽवनिभेदसदृश-रोषनिः शीलता शब्दलिङ्गवञ्चनाऽतिसन्धान-प्रियता-भेदकरणाऽनर्थोद्भावन-वर्णगन्धरसस्पर्शान्यत्वापादनजाति-कुलशीलसंदूषण-विसंवादनाभिसन्धि मिथ्याजीवित्वसद्गुण-व्यपलोपाऽसद्गुणख्यापन-नीलकापोतलेश्यापरिणामआर्तध्यानम-रणकालतादिलक्षणः प्रत्येतव्यः।

मिथ्यात्वयुक्त अधर्मका उपदेश, बहु आरम्भ, बहुपरिग्रह, अतिवंचना, कूटकर्म, पृथ्वीकी रेखा के समान रोषादि, निःशीलता, शब्द और संकेतादिसे परिवंचना का षड्यन्त्र, छल-प्रपञ्चकी रुचि, भेद उत्पन्न करना, अनर्थोद्भावन, वर्ण, रस, गन्ध आदि को विकृत करने की अभिरुचि, जातिकुलशील-संदूषण, विसंवाद रुचि, मिथ्याजीवित्व, सद्गुण लोप, असद्गुणख्यापन, नीलकापोतलेश्या रूप परिणाम, आर्तध्यान, मरण समय में आर्त रौद्र परिणाम इत्यादि तिर्यचायु के आस्रव के कारण हैं। (रा.वा. 6/16)

उम्मग्गदेसगो मग्गणासगो गूढहियमाइल्लो ।
सठसीलो य ससल्लो तिरियाऊ बंधदे जीवो॥

जो जीव विपरीत मार्ग का उपदेशक होई, भलामार्ग का नाशक होई, गूढ़ और जानने में न आवै ऐसा जाका हृदय परिणाम होइ, मायावी कपटी होई अर शठ मूर्खता संयुक्त जाका सहज स्वभाव होई, शल्यकरि संयुक्त होइ सो जीव तिर्यंच आयु को बाँधै है। (गो.क.मू. 805)

भोग भूमिज तिर्यंच आयु के बन्धयोग्य परिणाम

दादूण केई दाणं, पत्तविसेसेसु के वि दाणाणं ।
अणमोदणेण तिरिया, भोगक्खिदीए वि जायंति ॥
गहिदूण जिणलिंगं संजमसम्मत्तभावपरिचत्ता ।
मायाचारपयट्टा, चारित्तं णासयंति जे पावा ॥
दादूण कुलिंगीणं, णाणदाणाणि जे णरा मूढा ।
तव्वेसधरा केई, भोगमहीए हुवंति ते तिरिया ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई पात्र विशेषों को दान देकर और कोई दानों की अनुमोदना करके तिर्यंच भी भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं। जो पापी जिनलिंग को (मुनिव्रत) को ग्रहण करके संयम एवं सम्यक्त्व भाव को छोड़ देते हैं और पश्चात् मायाचार में प्रवृत्त होकर चारित्र को नष्ट कर देते हैं, तथा जो कोई मूर्ख मनुष्य कुलिंगियों को नाना प्रकार के दान देते हैं या उनके भेष को धारण करते हैं वे भोग-भूमि में तिर्यंच होते हैं। (ति.प. 4/376-78)

कर्मभूमिज मनुष्यायु के बन्धयोग्य परिणाम

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य। स्वभावमार्दवं च।

अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह का भाव मनुष्यायु का आस्रव है। स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायुपने का आस्रव है। (त.सू. 6/17,18)

नारकायुरास्रवो व्याख्यातः। तद्विपरीतो मानुषस्यायुष इति संक्षेपः। तद्व्यासः - विनीतस्वभावः प्रकृतिभद्रता प्रगुणव्यवहारता तनुकषायत्वं मरणकालासंक्लेशतादिः। स्वभावेन मार्दवम्। उपदेशानपेक्षमित्यर्थः। एतदपि मानुषस्यायुष आस्रवः।

नरकायुका आस्रव पहले कह आये हैं। उससे विपरीत भाव मनुष्यायु का आस्रव है। संक्षेप में यह सूत्र का अभिप्राय है। उसका विस्तार से खुलासा इस प्रकार है। स्वभाव का विनम्र होना, भद्र प्रकृति का होना, सरल व्यवहार करना, अल्प कषाय का होना तथा मरण के समय संक्लेश रूप परिणतिका नहीं होना आदि मनुष्यायु के आस्रव हैं। स्वभाव से मार्दव स्वभाव मार्दव है। आशय यह है कि बिना किसी के समझाये बुझाये मृदुता अपने जीवन में उतरी हुई हो इसमें किसी के उपदेश की आवश्यकता न पड़े। यह भी मनुष्यायु का आस्रव है। (स.सि. 6/17-18)

मिथ्यादर्शनालिङ्गितमति-विनीतस्वभावता प्रकृतिभद्रतामार्दवार्जव-समाचारसुखप्रज्ञापनीयता बालुकाराजिसदृशरोषप्रगुणव्यवहार प्राय-ताऽल्पारम्भपरिग्रह-संतोषाभिरतिप्राण्युपघातविरमणप्रदोष विकर्मनि-वृत्ति- स्वागताभिभाषणाऽमौखर्यप्रकृतिमधुरता लोकयात्रानुग्रह औदा-सीन्याऽनुसूयाऽल्पसंक्लेशता - गुरुदेवता-ऽतिथिपूजा संविभागशी-लता- कपोतपीतलेश्योपश्लेषधर्मध्यानमरणकालतादिलक्षणः।

भद्रमिथ्यात्व, विनीत स्वभाव, प्रकृतिभद्रता, मार्दव आर्जव परिणाम, सुख समाचार कहने की रुचि, रेतकी रेखा के समान क्रोधादि, सरल व्यवहार,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अल्पपरिग्रह, संतोष सुख, हिंसाविरक्ति, दुष्ट कार्यों से निवृत्ति, स्वागत-तत्परता, कम बोलना, प्रकृति मधुरता, लोकयात्रानुग्रह, औदासीन्यवृत्ति, ईर्षारहित परिणाम, अल्पसंक्लेश, देव-देवता तथा अतिथि पूजा में रुचि, दानशीलता, कापोत पीत लेश्या रूप परिणाम, मरण काल में धर्म ध्यान परिणति आदि मनुष्यायु के आस्रव के कारण हैं।

(रा.वा. 6/17)

अव्यक्तसामायिक-विराधितसम्यग्दर्शनता भवनाद्यायुषः महर्द्धिकमानुषस्य वा।

अव्यक्त सामायिक और सम्यग्दर्शन की विराधना आदि भवनवासी आदि देवों की आयु के और महर्द्धिक मनुष्यों की आयु के आस्रव के कारण हैं।

(रा.वा. 6/20)

तत्र ये हिंसादयः परिणामा मध्यमास्ते मनुज गतिनिर्वर्तकाः बालिकाराज्या, दारुणा, गोमूत्रिकया, कर्दमरागेण च समानाः यथासंख्येन क्रोधमानमायालोभाः परिणामाः। जीवघातं कृत्वा हा दुष्टं कृतं, यथा दुःखं मरणं वास्माकं अप्रियं तथा सर्वजीवानां। अहिंसा शोभना वयं तु असमर्थाहिंसादिकं परिहर्तुमिति च परिणामः। मृषापरदोषसूचकं परगुणनामसहनं वचनं वा सज्जानाचारः। साधुनामयोग्यवचने दुर्व्यापारे च प्रवृत्तानां का नाम साधुतास्माकमिति परिणामः। तथा शस्त्रप्रहारदप्यर्थः परद्रव्यापहरणं, द्रव्यविनाशो हि सकलकुटुम्बविनाशो, नेतरत् तस्माद्दुष्टकृत् परधनहर-णमिति परिणामः। परदारादिलङ्घनमस्माभिः कृतें तदतीवाशोभनं। यथास्मद्दाराणां परैर्ग्रहणे दुःखमात्मसाक्षिकं तद्वत्तेषामिति परिणामः यथा गङ्गा-दिमहानदीनां अनवरतप्रवेशेऽपि न तृप्तिः सागरस्यैवं द्रविणेनापि जीवस्य संतोषो नास्तीति परिणामः। एवमादि परिणामानां दुर्लभता अनुभवसि-द्धैव।

इन (तीव्र, मध्यम व मन्द) परिणामों में जो मध्यम हिंसादि परिणाम हैं वे मनुष्यपना के उत्पादक हैं। (तहाँ उनका विस्तार निम्न प्रकार जानना)।

1. चारों कषायों की अपेक्षा - बालुका में खिंची हुई रेखा के समान क्रोध परिणाम, लकड़ी के समान मान परिणाम, गोमूत्राकार के समान माया परिणाम, और कीचड़ के रंग के समान लोभ परिणाम ऐसे परिणामों से मनुष्यपना की प्राप्ति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. हिंसा की अपेक्षा - जीव घात करने पर, हा ! मैंने दुष्ट कार्य किया है, जैसे दुःख व मरण हम को अप्रिय हैं सम्पूर्ण प्राणियों को भी उसी प्रकार वह अप्रिय हैं, जगत में अहिंसा ही श्रेष्ट व कल्याणकारिणी है । परन्तु हम हिंसादिकों का त्याग करने में असमर्थ हैं। ऐसे परिणाम।

3. असत्य की अपेक्षा - झूठे पर दोषों को कहना दूसरों के सद्गुण देखकर मन में द्वेष करना, असत्य भाषण करना यह दुर्जनों का आचार है। साधुओं के अयोग्य ऐसे निंद्य भाषण और खोटे कामों में हम हमेशा प्रवृत्त हैं, इसलिए हममें सज्जनपना कैसे रहेगा ? ऐसा पश्चात्ताप करने रूप परिणाम।

4. चोरी की अपेक्षा - दूसरों का धन हरण करना, यह शस्त्रप्रहारसे भी अधिक दुखःदायक है, द्रव्यका विनाश होने से सर्वकुटुम्बका ही विनाश होता है, इसलिए मैंने दूसरों का धन हरण किया सो अयोग्य कार्य हमसे हुआ है, ऐसे परिणाम।

5. ब्रह्मचर्य की अपेक्षा -हमारी स्त्रीका किसी ने हरण करने पर जैसा हमको अतिशय कष्ट दिया है वैसा उनको भी होता है यह अनुभव से प्रसिद्ध है। ऐसे परिणाम होना।

6. परिग्रहकी अपेक्षा - गंगादि नदियाँ हमेशा अपना अनन्त जल लेकर समुद्र में प्रवेश करती हैं तथापि समुद्र की तृप्ति होती ही नहीं। यह मनुष्य प्राणी भी धन मिलने से तृप्त नहीं होता है। इस तरह के परिणाम दुर्लभ हैं। ऐसे परिणामों से मनुष्यपना की प्राप्ति होती है। (भ.आ.वि.446)

पयडीए तणुकसाओ दाणरदीसीलसंजमविहीणो।
मज्झिमगुणेहिं जुत्तोमणुवाऊं बधदे जीवो ॥

जो जीव विचार बिना प्रकृति स्वभाव ही करि मंद कषायी होइ, दान विषै प्रीतिसंयुक्त होइ, शील संयम कर रहित होइ, न उत्कृष्ट गुण न दोष ऐसे मध्यम गुणनिकरि संयुक्त होइ सो जीव मनुष्यायु कौं बाँधै है।

(गो.क.मू.806)

कुलकरों की आयु के बन्धयोग्य परिणाम

एदे चउदस मणुओ, पदिसुदिपहुदि हु णाहिरायंता।
पुव्वभवम्मि विदेहे, रायकुमारामहाकुले जादा ॥
कुसला दाणादीसुं, संजमतवणाणवंतपत्ताणं ।
णियजोग्गअणुट्ठाणा, मद्दवअज्जवगुणेहिं संजुत्ता ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्त भावणाए, भोगाउं बंधिऊण ते सव्वे ।
पच्छा रवाइयसम्मं गेण्हंति जिणिंदचरणमूलम्हि ॥

प्रतिश्रुतिको आदि लेकर नाभिराय पर्यन्त में चौदह मनु पूर्वभव में विदेह क्षेत्र के भीतर महाकुल में राजकुमार थे। वे सब संयम तप और ज्ञान से युक्त पात्रों के लिए दानादिक के देने में कुशल, अपने योग्य अनुष्टान से संयुक्त और मार्दव आर्जव गुणों से सहित होते हुए पूर्व में मिथ्यात्व भावना से भोगभूमिकी आयुको बाँधकर पश्चात् जिनेन्द्र भगवान के चरणों के समीप क्षायिक सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं। (ति.प. 4 /511-13)

सुभोग भूमिज मनुष्यायुके बन्धयोग्य परिणाम

भोगमहीए सव्वे, जायंते मिच्छभावसंजुत्ता ।
मंदकसायामाणुवा, पेसुण्णासूयदंबपरिहीणा ॥
वज्जिद मंसाहारा, मधुमज्जोदुंबरेहिं परिचत्ता ।
सच्चजुदा मदरहिदा, वारियरपदारपरिहीणा ॥
गुणधरगुणेसु रत्ता, जिणपूजं जे कुणंति परवसतो।
उववासतणु-सरीरा, अज्जवपहुदीहिं संपण्णा ॥
आहारदाणणिरदा, जदीसु वरविविहजोगजुत्तेसुं ।
विमलतरसंजमेसु, य विमुक्कगंथेसु भत्तीए ॥
पुव्वं बद्धणराऊ, पच्छा तित्थयरपादमूलम्मि ।
पाविदखाइयसम्मा, जायंते केई भोग भूमीए ॥
एवं मिच्छाइट्ठि, णिग्गंथाणं जदीण दाणाइं ।
दादूण पुण्णपाके भोगमही केइ जायंति ॥
आहाराभयदाणं, विविहोसहपोत्थयादिदाणं च ।
सेसे णाणोयणं दादूणं, भोगभूमि जायंते ॥

भोग भूमि में वे सब जीव उत्पन्न होते हैं जो मिथ्यात्व भाव से युक्त होते हुए भी मन्दकषायी हैं, पैशुन्य, असूयादि एवं दम्भ से रहित हैं, मांसाहार के त्यागी हैं, मधु मद्य और उदुम्बर फलों के भी त्यागी हैं, सत्यवादी हैं, अभिमान से रहित हैं, वेश्या और परस्त्री के त्यागी हैं, गुणियों के गुणों में अनुरक्त हैं, पराधीन होकर जिनपूजा करते हैं, उपवास से शरीर को कृश करने वाले हैं, आर्जव आदि से सम्पन्न हैं, तथा उत्तम एवं विविध प्रकार के योगों से युक्त, अत्यन्त निर्मल सम्यक्त्व के धारक और परिग्रह से रहित, ऐसे यतियों को भक्ति से आहार देने में तत्पर हैं। जिन्होंने पूर्व भव में मनुष्यायु को बाँध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिया है, पश्चात तीर्थंकर के पाद मूल में क्षायिक सम्यक्दर्शन प्राप्त किया है, ऐसे कितने ही सम्यक्दृष्टि पुरुष भी भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार कितने ही मिथ्यादृष्टि मनुष्य निर्ग्रन्थ यतियों को दानादि देकर पुण्यका उदय आने पर भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं। शेष कितने ही मनुष्य आहार दान, अभयदान, विविध प्रकार की औषध तथा ज्ञान के उपकरण पुस्तकादि के दान को देकर भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं।

(ति.प. 4/369-75)

कुभोग भूमिज मनुष्यायुके बन्धयोग्य परिणाम

मिच्छत्तम्मि रत्ताणं, मंदकसाया पियंवदा कुडिला ।
धम्मफलं मग्गंता, मिच्छादेवेसु भत्तिपरा ॥
सुद्धोदणसलिलोदण,कंजियअसणादिकट्ठसुकिलिट्ठा ।
पंचग्गितवं विसमं कायकिलेसं च कुव्वंता ॥
सम्मत्तरयणहीणा, कुमाणुसा लवणजलधिदीवेसुं ।
उपज्जंति अघण्णा, अण्णाणजलम्मिमज्जंता ॥
अदिमाणगव्विदा जे, साहूण कुणंति किंचि अवमाणं ।
सम्मत्ततवजुत्ताणं, जे णिग्गंथाणं दूसणा देंति ॥
जे मायाचाररदा, संजमतवजोगवज्जिदा पावा ।
इड्ढिरससादगारव, गरुवा जे मोहमावण्णा ॥
थूलसुहुमादिचारं, जे णालोचंति गुरुजणसमीवे ।
सज्झाय वंदणाओ, जेगुरुसहिदा ण कुव्वंति ॥
जे छंडिय मुणिसंघं, वसंति एकाकिणो दुराचारा ।
जे कोहेण य कलहं, सव्वेसिंतो पकुव्वंति ॥
आहारसण्ण सत्ता, लोहकसाएण जणिदमोहा जे ।
धरिऊण जिणलिंग, पावं कुव्वंति जे घोरं ॥
जे कुव्वंति ण भत्तिं, अरहंताणं तहेव साहूणं ।
जे वच्छलविहीणा, चाउव्वण्णम्मिसंघम्मि ॥
जे गेण्हंति सुवण्णप्पहुदिं जिणलिंग धारिणो हिट्ठा ।
कण्णाविवाहपहुंदि, संजदरूवेण जे पकुव्वंति ॥
जे भुंजंति विहिणा, मोणेणं घोर पावसंलग्गा ।
अण अण्णदरुदयादो, सम्मत्तं जे विणासंति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते कालवसं पत्ता, फलेण पावाण विसमपाकाणं ।
उप्पज्जंति कुरूवा, कुमाणुसा जलहिदीवेसुं ॥

मिथ्यात्व में रत, मन्द कषायी, प्रिय बोलने वाले, कुटिल धर्म फलको खोजने वाले, मिथ्यादेवों की भक्ति में तत्पर, शुद्ध ओदन, सलिलोदन व कांजी खाने के कष्ट से संक्लेशको प्राप्त विषम पंचाग्नि तप व कायक्लेश को करने वाले, और सम्यक्त्व रूपी रत्न से रहित अधन्य जीव अज्ञानरूपी जल में डूबते हुए लवणसमुद्र के द्वीपों में कुमानुष उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग तीव्र अभिमान से गर्वित होकर सम्यक्त्व व तपसे युक्त साधुओं का किंचित् भी अपमान करते हैं, जो दिगम्बर साधुओं की निन्दा करते हैं, जो पापी संयम तप व प्रतिमायोगसे रहित होकर मायाचार में रत रहते हैं, जो ऋद्धि ,रस और सात इन तीन गारवों से महान होते हुए मोह को प्राप्त हैं जो स्थूल व सूक्ष्म दोषों की गुरुजनों के समीप में आलोचना नहीं करते हैं, जो गुरु के साथ स्वाध्याय व वन्दना कर्म को नहीं करते, जो दुराचारी मुनि संघ को छोड़कर एकाकी रहते हैं, जो क्रोध से सबसे कलह करते हैं, जो आहार संज्ञा में आसक्त व लोभ कषाय से मोह को प्राप्त होते हैं, जो जिनलिंग को धारण कर घोर पाप को करते हैं, जो अरहन्त तथा साधुओं की भक्ति नहीं करते हैं , जो चातुर्वण्य संघ के विषय में वात्सल्य भाव से विहीन होते हैं, जो जिनलिंग के धारी होकर स्वर्णादिको हर्ष से ग्रहण करते हैं जो संयमीं के वेष में कन्या विवाहादिक करवाते हैं, जो मौन के बिना भोजन करते हैं, जो घोर पाप में संलग्न रहते हैं, जो अनन्तानुबन्धी चतुष्टय में से किसी एक के उदित होने से सम्यक्त्व को नष्ट करते हैं, वे मृत्युको प्राप्त होकर विषम परिपाकवाले पापकर्मों के फल से समुद्र के इन द्वीपों में कुत्सित रूप से कुमानुष उत्पन्न होते हैं। (ति.प. 4/2540-51)

देवायु सामान्य के बन्धयोग्य परिणाम

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि देवस्य। सम्यक्त्वं च।

सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप ये देवायु के आस्रव हैं। सम्यक्त्व भी देवायु का आस्रव है। (त.सू. 6/20-21)

स्वभावमार्दवं च। .....एतदपि मानुषस्यायुष आस्रवः। पृथग्योगकरणं किमर्थम्। उत्तरार्थम्, देवायुष आस्रवोऽयमपि यथा स्यात्।

स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायुका आस्रव है। प्रश्न - इस सूत्र को पृथक क्यों बनाया ? उत्तर - स्वभाव की मृदुता देवायुका भी आस्रव है इस बात के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बतलाने के लिए इस सूत्र को अलग बनाया है। (स.सि. 6/18)

अकामनिर्जराबालतपो मन्दकषायता ।
सुधर्मश्रवणं दानं तथायतनसेवनम् ॥
सरागसंयमश्चैव सम्यक्त्वं देशसंयमः ।
इति देवायुषो ह्येते भवन्त्यास्रवहेतवः ॥

बालतप व अकामनिर्जरा के होने से, कषाय मन्द रखने से, श्रेष्ठ धर्म को सुनने से, दान देने से, आयतन सेवी बनने से, सराग साधुओं का संयम धारण करने से, देशसंयम धारण करने से, सम्यग्दृष्टि होने से, देवायुका आस्रव होता है। (त.सा. 4/42)

अणुव्वदमहव्वदेहिं य बालतवाकामणिज्जराए य।
देवाउगं णिबंधइ सम्माइट्ठी य जो जीवो ॥

जो जीव सम्यग्दृष्टि है, सो केवल सम्यक्त्व करि साक्षात् अणुव्रत, महाव्रत निकरिदेवायुको बाँधै है बहुरि जो मिथ्यादृष्टि जीव है सो उपचाररूप अणुव्रत महाव्रत निकरि वा अज्ञानरूप बाल तपश्चरण करि वा बिना इच्छा बन्धादिकतै भई ऐसी अकाम निर्जराकरि देवायुकौं बाँधे है। (गो.क. 807)

भवनत्रिकायु सामान्य के बन्धयोग्य परिणाम

अव्यक्तसामायिक-विराधितसम्यग्दर्शनता भवनाद्यायुषः महर्द्धिकमानुषस्य वा पञ्चाणुव्रतधारिणोऽविराधितसम्यग्दर्शनाः तिर्यङ्मनुष्याः सौधर्मादिषु अच्युतावसानेसूत्पद्यन्ते, विनिपतितसम्यक्त्वा भवनादिषु। अनधिगतजीवाजीवा बालतपसः अनुपलब्धतत्त्वस्वभावा अज्ञानकृतसंयमाः संक्लेषाभावविशेषात् केचिद्भवनव्यन्तरादिषु सहस्रारपर्यन्तेषु मनुष्यतिर्यक्ष्वपि च। अकामनिर्जरा-क्षुत्तृष्णानिरोध-ब्रह्मचर्य-भूशय्या-मलधारण-परितापादिभिः परिखेदितमूर्तयः चारकनिरोधबन्धनबद्धा दीर्घकालरोगिणः असंक्लिष्टाः तरुगिरिशिखरपातिनः अनशनज्वलनजलप्रवेशनविषभक्षण धर्मबुद्धयः व्यन्तरमानुषतिर्यक्षु। निःशीलव्रताः सानुकम्पहृदयाः जलराजितुल्यरोषाभोगभूमिसमुत्पन्नाश्च व्यन्तरादिषु जन्म प्रतिपद्यन्ते इति।

अव्यक्त सामायिक, और सम्यग्यदर्शन की विराधना आदि भवनवासी आदि की आयु के अथवा महर्द्धिक मनुष्य की आयु के आस्रव के कारण हैं। पंच अणुव्रतों के धारक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच या मनुष्य सौधर्म आदि अच्युत पर्यन्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं। यदि सम्यग्दर्शन की विराधना हो जाये तो भवनवासी आदि में उत्पन्न होते हैं। तत्त्वज्ञान से रहित बालतप तपने वाले अज्ञानी मन्द कषाय के कारण कोई भवनवासी व्यन्तर आदि सहस्त्रार स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, कोई मरकर मनुष्य भी होते हैं, तथा तिर्यंच भी। अकाम निर्जरा, भूख प्यास का सहना, ब्रह्मचर्य, पृथ्वीपर सोना, मल धारण आदि परिषहों से खेदखिन्न न होना, गूढ़ पुरुषों के बन्धन में पड़ने पर भी नहीं घबड़ाना, दीर्घकालीन रोग होने पर भी असंक्लिष्ट रहना, या पर्वत के शिखर से झंपापात करना, अनशन, अग्नि प्रवेश, विषभक्षण आदि को धर्म मानने वाले कुतापस व्यन्तर और मनुष्य तथा तिर्यचों में उत्पन्न होते हैं। जिनने व्रत या शीलों को धारण नहीं किया किन्तु जो सदय हृदय हैं, जल रेखा के समान मन्द कषायी हैं, तथा भोग भूमि में उत्पन्न होने वाले व्यन्तर आदि में उत्पन्न होते हैं। (रा.वा. 6/20)

उम्मग्गचारि सणिदाणणलादिमुदा अकामणिज्जरिणो।
कुदवा सबलचरित्ता भवणतियं जंति ते जीवा ॥

उन्मार्गचारी, निदान करने वाले अग्नि, जल आदि से झंपापात करने वाले, बिना अभिलाष बन्धादिक कै निमित्त तैं परिषह सहनादि करि जिनकै निर्जरा भई, पंचाग्नि आदि खोटे तपके करने वाले, बहुरि सदोष चारित्र के धरन हारे जे जीव हैं वे भवनत्रिक विषै जाय ऊपजैं हैं। (त्रि. सा. /450)

भवनवासी देवायु के बन्धयोग्य परिणाम

अवमिदसंका केई, णाणचरित्ते किलट्ठिभावजुदा ।
भवणामरेसु आउं, बंधंति हु मिच्छभाव जुदा ॥
अविणयसत्ता केई, कामिणिविरहज्जरेण जज्जरिदा।
कलहपिया पाविट्ठा जायंते भवणदेवेसु ॥
जे कोहमाणमायालोहासत्ताकिलिट्ठचारित्ता ।
वइराणुबद्धरुचिणो, ते उपज्जंति असुरेसु ॥

ज्ञान और चारित्र के विषय में जिन्होंने शंका को अभी दूर नहीं किया है तथा जो क्लिष्ट भाव से युक्त हैं, ऐसे जीव मिथ्यात्व भाव से सहित होते हुए भवनवासी सम्बन्धी देवों की आयुको बाँधते हैं। कामिनी के विरहरूपी ज्वर से जर्जरित, कलहप्रिय और पाप्पिष्ठ कितने ही अविनयी जीव भवनवासी देवों में उत्पन्न होते हैं। जो जीव क्रोध, मान, माया में आसक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, अकृपिष्ठ चारित्र अर्थात् क्रूराचारी हैं, तथा वैर भाव में रुचि रखते हैं वे असुरों में उत्पन्न होते हैं। (ति.प 3/200-209)

व्यन्तर तथा नीच देवों की आयु के बन्ध योग्य परिणाम

णाणस्स केवलीणं धम्मस्साइरिय सव्वसाहूणं।
माइय अवण्णवादी खिब्भिसिय भावणं कुणइ ॥
मंताभिओगकोदुगभूदीयम्मं पउंजदे जोहु ।
इद्धिढरससादहेदुं अभिओगं भावणं कुणइ ॥

श्रुतज्ञान, केवली व धर्म, इन तीनों के प्रति मायावी अर्थात् ऊपर से इनके प्रति प्रेम व भक्ति दिखाते हुए, परन्तु अन्दर से इनके प्रति बहुमान या आचरण से रहित जीव, आचार्य, उपाध्याय व साधु परमेष्ठी में दोषों का आरोपण करने वाले, और अवर्णवादी जन ऐसे अशुभ विचारों से मुनि किल्विष जाति के देवों में जन्म लेते हैं। मन्त्राभियोग्य अर्थात् कुमारी वगैरह में भूतका प्रवेश उत्पन्न करना, कौतुहलोपदर्शन क्रिया अर्थात् अकाल में जलवृष्टि आदि करके दिखाना, आदि चमत्कार, भूतिकर्म अर्थात् बालकादिकों की रक्षा के अर्थ मन्त्र प्रयोग के द्वारा भूतों की क्रीड़ा दिखाना- ये सब क्रियाएँ ऋद्धि,गारव या रस गौरव, या सात गौरव दिखाने के लिए जो करता है सो आभियोग्य जाति के वाइन देवों में उत्पन्न होता है।

(भ.आ. 181)

मरणे विराहिदम्मि, य केई कंदप्पकिव्विसा देवा ।
अभियोगा संमोहप्पहुदीसुरदुग्गदीसु जायंते ॥
जे सच्चवयण हीणा, हस्सं कुव्वंति बहुजणे णियमा ।
कंदप्परत्तहिदया, ते कंदप्पेसु जायंति ॥
जे भूदिकम्ममंताभियोग कोदूहलाइसंजुत्ता ।
जणवण्णे य पअट्टा, वाहणदेवेसु ते होंति ॥
तित्थयरसंघमहिमाआगमगंथादिएसु पडिकूला ।
दुव्विणया णिगदिल्ला जायंते किव्विंससुरेसुं ॥
उप्पहउवएसयरा विप्पडिवण्णा जिणिंदमग्गम्मि ।
मोहेणं संमोघा, संमोहसुरेसु जायंते ॥(ति.प. 3/204-8)
सवल चरिता कूरा, उम्मग्गट्ठा णिदाणकदभावा ।
मंदकसायाणुरदा, बंधंते अप्पइद्धिअसुराऊं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईसाणलंतवच्चुदकप्पंतं जाव होंति कंदप्पा ।
किव्विसिया अभियोगा णियकप्पजहण्णठिदिसहिया ॥

मरण के विराधित करने पर अर्थात् समाधि मरण के बिना, कितने ही जीव दुर्गतियों में कन्दर्प, किल्विष, आभियोग्य और सम्मोह इत्यादि देव उत्पन्न होते हैं। जो प्राणी सत्य वचन से रहित हैं, नित्य ही बहुजन में हास्य करते हैं, और जिनका हृदय कामासक्त रहता है, वे कन्दर्प देवों में उत्पन्न होते हैं। जो भूतिकर्म, मन्त्राभियोग और कौतूहलादि आदि से संयुक्त हैं तथा लोगों के गुणगान (खुशामद) में प्रवृत्त रहते हैं, वे वाहन देवों में उत्पन्न होते हैं . जो लोग तीर्थंकर व संघ की महिमा एवं आगमग्रन्थादि के विषय में प्रतिकूल हैं, दुर्विनयी, और मायाचारी हैं, वे किल्विष देवों में उत्पन्न होते हैं। उत्पथ अर्थात् कुमार्ग का उपदेश करने वाले, जिनेन्द्रोपदिष्ट मार्ग में विरोधी और मोह से संमुग्ध जीव सम्मोह जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं। दूषित चारित्रवाले, क्रूर, उन्मार्ग में स्थित, निदान भाव से सहित और मन्द कषायों में अनुरक्त जीव अल्पर्द्धिक देवों की आयु को बाँधते हैं। कन्दर्प, किल्विषिक और आभियोग्य देव अपने-अपने कल्पकी जघन्य स्थिति सहित क्रमशः ईशान, लान्तव और अच्युत कल्प पर्यन्त होते हैं। (ति.प. 8/597-589)

ज्योतिषदेवायुके बंध योग्य परिणाम

आयुबंधणभावं, दंसणगहणस्स कारणं विविहं।
गुणठाणादि पवण्णण, भावण लोएव्व वत्तव्वं ॥

आयु के बन्धक भाव, सम्यग्दर्शन ग्रहण के विविध कारण और गुणस्थानादिक का वर्णन, भावनलोक के समान कहना चाहिए।

(ति.प. 7/622)

कल्पवासी देवायु सामान्य के बन्धयोग्य परिणाम

कल्याणमित्रसम्बन्ध आयतनोपसेवासद्धर्मश्रवणगौरवदर्शनाऽनवद्य-प्रोषधोपवास- तपोभावना- बहुश्रुतागमपरत्वकषायनिग्रह-पात्रदानपीत-पद्मलेश्यापरिणाम-धर्मध्यानमरणादिलक्षणः सौधर्माद्यायुषः आस्रवः।

कल्याणमित्र संसर्ग, आयतन सेवा, सद्धर्मश्रवण, स्वगौरवदर्शन, प्रोषधोपवास, तपकी भावना, बहुश्रुतत्व आगमपरता कषायनिग्रह, पात्रदान, पीत पद्मलेश्या के परिणाम, मरण काल में धर्मध्यान रूप परिणति आदि सौधर्म आदि आयु के आस्रव हैं। (रा.वा. 6/20)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पवासी देवायु विशेष के बन्धयोग्य परिणाम

सबलचरित्ता कूरा, उम्मग्गट्ठा णिदाणकदभावा ।
मंद कसायाणुरदा, बंधंते अप्पइड्ढि असुराउं ॥
दसपुव्वधरा सोहम्मप्पहुदि सव्वट्ठसिद्धिपरियंतं ।
चोद्दसपुव्वधरा तह, लंतवकप्पादि वच्चंते ॥
सोहम्मादि अच्चुदपरियंतं जंति देसवदजुत्ता ।
चउविहदावपणट्ठा, अकसाया पंचगुरुभत्ता ॥
सम्मत्तणाणअज्जवलज्जासीलादिएहि परिपुण्णा ।
जायंते इत्थीओ, जा अच्चुदकप्पपरियंतं ॥
जिणलिंगधारिणो जे, उक्किट्ठतवस्समेण संपुण्णा ।
ते जायंति अभव्वा, उवरिमगेवेज्जपरियंतं ॥
परदोअच्चणवदतवदंसणणाणचरण संपण्णा ।
णिग्गंथा जायंते, भव्वा सव्वट्ठसिद्धि परियंतं ॥
चरयापरिवज्जधरा मंदकसाया पियंवदा केई ।
कमसो भावणपहुदि, जम्मंते बम्हकप्पंतं ॥
जे पंचेंदियतिरिया, सण्णी हु अकामणिज्जरेण जुदा ।
मंदकसाया केई, जंति सहस्सारपरियंतं ॥
तणदंडणादिसहिया जीवा जे अमंदकोहजुदा ।
कमसो भावपहुदो, केई जम्मंति अच्चुदं जाव ॥
आ ईसाणं कप्पं उप्पत्ती होदि देवदेवीणं ।
तप्परदो उब्भूदी, देवाणं केवलाणं पि ॥
ईसाणलंतवच्चुदकप्पंतं जाव होंति कंदप्पा ।
किव्विसिया अभियोगा, णियकप्पजहण्णठिदिसहिया ॥

दूषित चरित्रवाले, क्रूर, उन्मार्ग में स्थित, निदान भाव से सहित, कषायों में अनुरक्त जीव अल्पर्द्धि व देवों की आयु बाँधते हैं। दस पूर्व के धारी जीव सौधर्मादि सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त तथा चौदहपूर्वधारी लांतव कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जाते हैं। चार प्रकार के दान में प्रवृत्त, कषायों से रहित व पंचगुरुओं की भक्ति से युक्त ऐसे देशव्रत संयुक्त जीव सौधर्म स्वर्ग को आदि लेकर अच्युतस्वर्ग पर्यन्त जाते हैं। सम्यक्त्व, ज्ञान, आर्जव, लज्जा एवं शीलादि से परिपूर्ण स्त्रियाँ अच्युत कल्प पर्यन्त जाती हैं। जो जघन्य जिनलिंग को धारण करने वाले और उत्कृष्ट तप के श्रम से परिपूर्ण वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपरिमग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। पूजा, व्रत, तप, दर्शन,ज्ञान और चारित्र से सम्पन्न निर्ग्रन्थ भव्य इससे आगे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। मंद कषायी व प्रिय बोलने वाले कितने ही चरक (साधुविशेष) और परिव्राजक क्रम से भवनवासियों को आदि लेकर ब्रह्मकल्प तक उत्पन्न होते हैं। जो कोई पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी अकाम निर्जरा से संयुक्त हैं, और मंदकषायी हैं वे सहस्रार कल्प तक उत्पन्न होते हैं। जो तनुदंडन अर्थात् कायक्लेश आदि से सहित और तीव्र क्रोध से युक्त हैं ऐसे कितने ही आजीवक साधु क्रमशः भवनवासियों से लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्त जन्म लेते हैं। देव और देवियों की उत्पत्ति ईशान कल्प तक होती है। इससे आगे केवल देवों की उत्पत्ति ही है। कन्दर्प, किल्विषिक और आभियोग्य देव अपने अपने कल्पकी जघन्य स्थिति सहित क्रमशः ईशान, लान्तव और अच्युत कल्प पर्यन्त होते हैं। (ति.प. 8/579-589)

लौकान्तिक देवायु के बन्धयोग्य परिणाम

इह खेत्ते वेरग्गं, बहुभेयं भाविदूण बहुकालं ।
संजम भावेहि मुणी, देवा लोयंतिया होंति ॥
थुइणिंदासु समाणो, सुहदुक्खेसु सबंधुरिउवग्गे ।
जो समणो सम्मत्तो, सोच्चिय लोयंतियो होदि ॥
जे णिरवेक्खा देहे, णिछंदा णिम्ममा णिरारम्भा ।
णिरवज्जा समणवरा, ते च्चिय लोयंतिया होंति ॥
संजोगविप्पयोगे, लाहालाहम्मि जीविदे मरणे ।
जो समदिट्ठी समणो, सोच्चिय लोयंतिओ होदि ॥
अणवरदसमं पत्ता, संजमसमिदीसु झाणजोगे सुं ।
तिव्वतवचरणजुत्ता समणा लोयंतिया होंति ॥
पंचमहव्वय सहिया पंचसु समिदीसु चिरम्मि चेट्ठंति।
पंचक्खविसयविरदा रिसिणो लोयंतिया होंति ॥

इस क्षेत्र में बहुत काल तक बहुत प्रकार के वैराग्य को भाकर संयम से युक्त मुनि लौकान्कि देव होते हैं। जो सम्यग्दृष्टि श्रमण (मुनि) स्तुति और निन्दा में, सुख और दुःख में तथा बन्धु और रिपु में समान हैं वही लौकान्तिक होता है। जो देह के विषय में निरपेक्ष, निर्द्वन्द्व, निर्मम, निरारम्भ और निरवद्य हैं वे ही श्रेष्ठ श्रमण लौकान्तिक देव होते हैं। जो श्रमण संयोग और वियोग में, लाभ और अलाभ में, तथा जीवित और मरण में, समदृष्टि होते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं वे लौकांतिक होते हैं। संयम, समिति, ध्यान एवं समाधि के विषय में जो निरन्तर श्रमको प्राप्त हैं अर्थात् सावधान हैं, तथा तीव्र तपश्चरण से संयुक्त हैं वे श्रमण लौकान्तिक होते हैं। पाँच महाव्रतों से सहित, पाँच समितियों का चिरकाल तक आचरण करने वाले, और पाँचों इन्द्रिय विषयों से विरक्त ऋषि लौकान्तिक होते हैं। (ति.प.8 / 669-74)

नामकर्म

नाना मिणोति निर्वर्त्तयतीति नाम।

जो नाना प्रकार की रचना निष्पन्न करता है, वह नामकर्म है। (ध. 6/13)

नानायोनिषु नारकादिपर्यायैरात्मानं नमयति-शब्दयतीति नाम चित्रकारवत्।

चित्रकार की तरह जो आत्मा को नाना योनियों में नरकादि पर्यायों द्वारा नमाता है अर्थात् ले जाता है, वह नामकर्म है। (क.प्र./3)

नमयत्यात्मानं नम्यतेऽनेनेति वा नाम।

जो आत्मा को नमाता है या जिसके द्वारा आत्मा नमता है वह नामकर्म है। (स.सि. 8/4)

विशेष - शंका- उस नामकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान - शरीर, संस्थान, वर्ण आदि कार्योंके भेद अन्यथा नहीं हो सकते हैं, इस अन्यथानुपपत्तिसे नामकर्मका अस्तित्व जाना जाता है। (ध. 6/13)

नामकर्म के भेद

णामस्स कम्मस्स वादालीसं पिंडपयडीणामाइं गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं सरीरसंट्ठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं अगुरुअलहुवणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दूभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं चेदि।

नामकर्म की ब्यालीस पिंड प्रकृतियाँ हैं -गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरबंधननाम, शरीरसंघातनाम, शरीर संस्थान नाम, शरीर अंगोपांगनाम, शरीर संहनननाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, आनुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम परघातनाम उच्छवास नाम, आतापनाम, उद्योतनाम, विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम पर्याप्त नाम, अपर्याप्त नाम, प्रत्येक शरीरनाम, साधारण शरीर नाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थकरनाम ये नामकर्म की व्यालीस पिंडकृतियां हैं। (ध. 6/50)

गतिनामकर्म

जं णिरय-तिरिक्खमणुस्सदेवाणं णिव्वत्तयं कम्मं तं गदिणामं।

जो नरक, तिर्यंञ्च, मनुष्य और देव पर्याय का बनानेवाला कर्म है, वह गतिनामकर्म है। (ध. 13/363)

जम्हि जीवभावे आउकम्मादो लद्धावट्ठाणे संते सरीरादियाइं कम्माइमुदयं गच्छंति सो भावो जस्स पोग्गलक्खंधस्स मिच्छत्तादिकारणेहि पत्तस्स कम्मभावस्स उदयादो होदि तस्स कम्मक्खंधस्स गति त्ति सण्णा।

जिस जीव भाव में आयुकर्म से अवस्थान के प्राप्त करने पर शरीर आदि कर्म उदय को प्राप्त होते हैं वह भाव मिथ्यात्व आदि कारणों के द्वारा कर्म भाव को प्राप्त जिस पुद्गल स्कंध के उदय से उत्पन्न होता है, उस कर्म स्कंध की 'गति' यह संज्ञा है। (ध. 6/50)

यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः।

जिसके उदय से आत्मा भवान्तर को जाता है वह गति है। (स.सि. 8/11)

गतिनामकर्म के भेद

जं तं गतिणामकम्मं तं चउव्विहं णिरयगदिणामं तिरिक्खगदिणामं मणुसगदिणामं देवगदिणामं चेदि।

जो गतिनामकर्म है वह चार प्रकार का है-नरकगतिनामकर्म, तिर्यग्गति-नामकर्म, मनुष्यगतिनामकर्म और देवगतिनामकर्म। (ध. 6/67)

नरकगति नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण णिरयभावो जीवाणं होदि, तं कम्मं णिरयगति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति उच्चदि, कारणे कज्जुवयारादो।

जिस कर्म के उदय से नारक भाव जीवों के होता है, वह कर्म कारण में कार्य के उपचार से 'नरकगति' इस नाम से कहलाता है। (ध. 6/67)

हिंसादिष्वसदनुष्ठानेषु व्यापृताः निरतास्तेषां गतिर्निरतगतिः। अथवा नरान् प्राणिनः कायति यातयति खलीकरोति इति नरकः कर्म, तस्य नरकस्यापत्यानि नारकास्तेषां गतिर्नारकगतिः।

जो हिसादि असमीचीन कार्यों में व्यापृत हैं उन्हें निरत कहते हैं और उनकी गति को निरतगति कहते हैं। अथवा जो नर अर्थात् प्राणियों को काता है अर्थात् यातना देता है, पीसता है, उसे नरक कहते हैं। नरक यह एक कर्म है। इससे जिनकी उत्पत्ति होती है उनको नारक कहते हैं, और उनकी गति को नारकगति कहते हैं। (ध. 1/201)

सकलतिर्यक्पर्यायोत्पत्तिनिमित्ता तिर्यग्गतिः। अथवा तिर्यग्गतिकर्मोदयापादित तिर्यक्पर्यायकलापस्तिर्यग्गतिः अथवा तिरो वक्रं कुटिलमित्यर्थः तदञ्चन्ति व्रजन्तीति तिर्यञ्चः। तिरश्चां गतिः तिर्यग्गतिः।

समस्त जाति के तिर्यंचों में उत्पत्तिका जो कारण है उसे तिर्यग्गति कहते हैं अथवा तिर्यग्गति कर्म के उदय से प्राप्त हुए तिर्यंचपर्यायों के समूह को तिर्यग्गति कहते हैं अथवा तिरस् वक्र और कुटिल ये एकार्थवाची नाम हैं, इसलिये यह अर्थ हुआ कि जो कुटिलभाव को प्राप्त होते हैं उन्हें तिर्यंच कहते हैं और उनकी गति को तिर्यग्गति कहते हैं। (ध. 1/203)

यतो जीवस्य नारकपर्यायो भवति सा नरकगतिः।

जिसके कारण जीव की नारकपर्याय होती है, वह नरकगति है।

(क.प्र./17)

यन्निमित्त आत्मनो नारको भावस्तन्नरकगतिनाम।

जिसका निमित्त पाकर आत्मा का नारक भाव होता है वह नरकगति नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

तिर्यग्गति नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण तिरिक्खभावो जीवाणं होदि, तं कम्मं तिरिक्खगदि त्ति उच्चदि, कारणे कज्जुवयारादो।

जिस कर्म के उदय से तिर्यञ्च भाव जीवों के होता है, वह कर्म कारण में कार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के उपचार से 'तिर्यग्गति' इस नाम से कहलाता है। (ध. 6/67 आ)

तिरियंति कुडिल-भावं सुवियड-सण्णाणिगिट्ठमण्णाणा।
अच्चंत-पाव-बहुला तम्हा तेरिच्छया णाम ॥

जो मन, वचन और कायकी कुटिलता को प्राप्त है, निजकी आहारादि संज्ञाएँ सुव्यक्त हैं, जो निकृष्ट अज्ञानी हैं और जिनके अत्यधिक पापकी बहुलता पायी जावे उनको तिर्यंच कहते हैं। (ध 1/202)

यतस्तिर्यक्पर्यायो भवति प्राणिनः सा तिर्यग्गतिः।

जिसके कारण जीव की तिर्यंच पर्याय होती है, वह तिर्यग्गति है।

(क.प्र./18)

तिरोभावो न्यग्भावः उपबाह्यत्वमित्यर्थः ततः कर्मोदयापादितभावा तिर्यग्योनिरित्याख्यायते। तिरश्चियोनि र्येषां ते तिर्यग्योनयः।

तिरोभाव, न्यग्भाव, उपबाह्य सब एकार्थवाची हैं। तिरोभाव अर्थात् नीचे रहना-बोझा ढोना कर्मोदय से जिनमें तिरोभाव प्राप्त है, वे तिर्यग्योनि हैं।

(रा.वा./4/27)

मनुष्यगतिनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण मणुसभावो जीवाणं होदि, तं कम्मं मणुसगदि त्ति उच्चदि, कारणे कज्जुवयारादो।

जिस कर्म के उदय से मनुष्य भाव जीवों के होता है, वह कर्म कारण में कार्य के उपचार से 'मनुष्यगति' इस नाम से कहलाता है। (ध. 6/67 आ)

यतो मनुष्यपर्याय आत्मनो भवति सा मनुष्यगतिः।

जिसके कारण आत्मा की मनुष्यपर्याय होती है, वह मनुष्यगति है।

(क.प्र./18)

देवगतिनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण देवभावो जीवाणं होदि, तं कम्मं देवगदि त्ति उच्चदि, कारणे कज्जुवयारादो।

जिस कर्म के उदय से देवभाव जीवों के होता है, वह कर्म कारण में कार्य के उपचार से 'देवगति' इस नाम से कहलाता है। (ध. 6/67 आ)

यतो देवपर्यायो देहिनो भवति सा देवगतिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसके कारण प्राणी को देवपर्याय होती है, वह देवगति है। (क.प्र./18)

देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तरे हेतौ बाह्यविभूतिविशेषैः द्वीपसमुद्रादि प्रदेशेषु यथेष्टं दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः।

अभ्यन्तर कारण देवगति नामकर्म के उदय होने पर नाना प्रकार की बाह्य विभूति से द्वीप समुद्रादि अनेक स्थानों में इच्छानुसार क्रीड़ा करते हैं वे देव कहलाते हैं। (स.सि. 4/1)

जातिनामकर्म

जातिर्जीवानां सदृशपरिणामः। यदि जातिनामकर्म न स्यात् मत्कुणा मत्कुणैः, वृश्चिका वृश्चिकैः, पिपीलिकाः पिपीलिकाभिः, ब्रीहयोः ब्रीहिभिः शालयः शालिभिः समाना न जायरेन्। दृश्यते च सादृश्यम्। तदो जत्तो कम्मक्खंधादो जीवाणं भूओ सरिसत्तमुप्पज्जदे, सो कम्मक्खंघो कारणे कज्जुवयारादो जादि त्ति भण्णदे।

जीवों के सदृश परिणाम को जाति कहते हैं। यदि जाति नामकर्म न हो, तो खटमल खटमलों के साथ, बिच्छू बिच्छुओं के साथ चीटियां चीटियों के साथ, धान्य धान्य के साथ और शालि शालि के साथ समान न होगी। किन्तु इन सब में परस्पर सदृशता दिखाई देती है। इसलिए जिस कर्म स्कंध से जीवों के अत्यंत सदृशता उत्पन्न होती है वह कर्म स्कंध कारण में कार्य के उपचार से 'जाति' इस नामवाला कहलाता है। (ध. 6/51)

एइंदिय - वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियभाव णिव्वत्तयं जं कम्मं तं जादिणामं।

जो कर्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय भाव का बनाने वाला है वह जाति नामकर्म है। (ध. 13/363)

नरकादिगतिष्वव्यभिचारिणा सादृश्येनैकीकृतोऽर्थात्मा जातिः। तन्निमित्तं जाति नाम।

नारकादि गतियों में जिस अव्यभिचारी सादृश्य से एकपने का बोध होता है, वह जाति है। इसका निमित्त जाति नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - यदि जीवों का सदृश परिणाम कर्मके आधीन न होवे, तो चतुरिन्द्रिय जीव घोड़ा, हाथी, भेड़िया, बाघ और छबल्ल आदिके आकारवाले हो जायेंगे तथा पंचेन्द्रिय जीव भी भ्रमर, मत्कुण, शलभ, इन्द्रगोप, क्षुल्लक, अक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और वृक्ष आदि के आकारवाले हो जायेंगे। किन्तु इस प्रकार हैं नहीं, क्योंकि, इस प्रकारके वे पाये नहीं जाते तथा प्रतिनियत सदृश परिणामोंमें अवस्थित वृक्ष आदि पाये जाते हैं। (ध 6/52)

जातिनामकर्म के भेद

जं तं जादिणामकम्मं तं पंचविहं एइंदिय जातिणामकम्मं बीइंदिय जादिणामकम्मं तीइंदिजादिणामकम्मं चउरिंदिय जादिणाम कम्मं, पंचिंदिय जादिणामकम्मं चेदि।

जो जाति नाम कर्म है वह पांच प्रकार का है - एकेन्द्रिय जातिनामकर्म, द्वीन्द्रिय जातिनामकर्म, त्रीन्द्रियजाति नाम कर्म, चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म और पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म। (ध 6/67)

एकेन्द्रियजाति नामकर्मः

एइंदियाणमेइंदिएहि एइंदियभावेण जस्स कम्मस्स उदएण सरिसत्तं होदि तं कम्ममेइंदियजादिणामं।

जिस कर्म के उदय से एकेन्द्रिय जीवों की एकेन्द्रिय जीवों के साथ एकेन्द्रिय भाव से सदृशता होती है वह एकेन्द्रिय जाति नामकर्म कहलाता है। (ध. 6/67)

तत्र स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति यतः सा एकेन्द्रियजातिः।

जिसके कारण जीव केवल स्पर्शन इन्द्रियवान् होता है, वह एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म है। (क.प्र./19)

यदुदयात्मा एकेन्द्रिय इति शब्द्यते तदेकेन्द्रियजातिनाम।

जिसके उदय से आत्मा एकेन्द्रिय कहा जाता है वह एकेन्द्रिय जाति नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - एकेन्द्रियजातिनामकर्म भी अनेक प्रकारका है। यदि ऐसा न माना जाय, तो जामुन, नीम, आम, निब्बू, कदम्ब, इमली, शाली, धान्य, जौ और गेहूँ आदि जातियोंका भेद नहीं हो सकता है। (ध. 6/67-68)

द्वीन्द्रिय जातिनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं वीइंदियत्तणेण समाणत्तं होदि तं कम्मं बीइंदियणामं।

जिस कर्म के उदय से जीवों की द्वीन्द्रियत्व की अपेक्षा समानता होती है वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीन्द्रियजाति नामकर्म कहलाता है। (ध. 6/68)

यतः स्पर्शनरसनेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा द्वीन्द्रियजातिः।
जिसके कारण जीव केवल स्पर्शन और रसना इन्द्रिय युक्त होता है, वह द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म है। (क.प्र./19)

विशेष - द्वीन्द्रियजातिनामकर्म अनेक प्रकारका है, अन्यथा शंख, मातृवाह, क्षुल्लक, वराटक (कौंडी), अरिष्ठ, शुक्ति (सीप), गंडोला और कुक्षि-कृमि (पेटमें उत्पन्न होनेवाला कीड़ा) आदि जातियों का भेद नहीं बन सकता है। (ध. 6/68)

त्रीन्द्रिय जातिनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं तीइंदियभावेण समाणत्तं होदि तं तीइंदिय जादिणामकम्मं।
जिस कर्म के उदय से जीवों की त्रीन्द्रिय भाव की अपेक्षा समानता होती है, वह त्रीन्द्रिय जातिनाम कर्म है। (ध. 6/68)

यतः स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा त्रीन्द्रियजातिः।
जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना तथा घ्राण इन्द्रिय युक्त होता है, वह त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म है। (क.प्र./19)

विशेष - त्रीन्द्रियजातिनामकर्म अनेक प्रकार का है, अन्यथा, कुंथु, मत्कुण (खटमल) जूं, विच्छू, गोम्ही, इन्द्रगोप और पिपीलिका (चींटी) आदि जातियों का भेद हो नहीं सकता है। (ध. 6/68)

चतुरिन्द्रिय जातिनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं चउरिंदिय भावेण समाणत्तं होदि तं कम्मं चउरिंदिय जादिणामं।
जिस कर्म के उदय से जीवों की चतुरिन्द्रिय भाव की अपेक्षा समानता होती है वह चतुरिन्द्रिय जातिनामकर्म है। (ध. 6/68)

यतः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुष्मन्तो जीवा भवन्ति सा चतुरिन्द्रिय जातिः।
जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु युक्त होता है, वह चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म है। (क.प्र./19)

विशेष - चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म अनेक प्रकारका है, अन्यथा भ्रमर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मधुकर, शलभ, पतंग, दंशमशक और मक्खी आदि जातियोंका भेद नहीं हो सकता है। (ध. 6/68)

पंचेन्द्रियजातिनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं पंचिंदियभावेण समाणत्त होदि तं पंचिंदियजादिणामकम्मं।

जिस कर्म के उदय से जीवों की पंचेन्द्रियपनेकी अपेक्षा समानता होती है, वह पंचेन्द्रियजादिनाम कर्म है। (ध. 6/68)

यतः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा पञ्चेन्द्रियजातिः।

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रिय युक्त होता है, वह पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म है। (क.प्र./20)

विशेष - पंचेन्द्रियजातिनामकर्म अनेक प्रकारका है, अन्यथा, देव, नारकी, सिंह, अश्व, हस्ती, वृक, व्याघ्र और चीता आदि जातियोंका भेद बन नहीं सकता है। (ध. 6/68)

शरीरनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण ओरालिय - वेउव्विय-आहार-तेजा कम्मइय सरीरपरमाणू जीवेण सह बंधमागच्छंति तं कम्मं सरीरणामं।

जिस कर्म के उदय से औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर के परमाणु जीव के साथ बंध को प्राप्त होते हैं, वह शरीर नामकर्म है। (ध. 13/363)

जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए पोग्गलक्खंधा तेजा कम्मइयवग्गण पोग्गलक्खंधा च सरीर जोग्गपरिणामेहि परिणदा संता जीवेण संबज्झंति तस्स कम्मक्खंधस्स सरीरमिदि सण्णा।

जिस कर्म के उदय से आहार वर्गणा के पुद्गल स्कंध तथा तैजस और कार्मण वर्गणा के पुद्गल स्कंध शरीर योग्य परिणामों के द्वारा परिणत होते हुए जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं उस कर्म स्कंध की 'शरीर' यह संज्ञा है। (ध. 6/52)

यदुदयादात्मनः शरीरनिर्वृत्तिस्तच्छरीरनाम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसके उदय से आत्मा के शरीर की रचना होती है वह शरीरनामकर्म है।
(स.सि.8/11)

विशेष - यदि शरीरनामकर्म जीवके न हो, तो जीवके अशरीरताका प्रसंग आता है। शरीर-रहित होनेसे अमूर्त आत्मा के कर्मोंका होना भी संभव नहीं है, क्योंकि, मूर्त पुद्गल और अमूर्त आत्माके सम्बन्ध होनेका अभाव है।
(ध. 6/52)

शरीरनामकर्म के भेद

जं तं सरीणणामकम्मं तं पंचविहं ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेयासरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि।

जो शरीर नाम कर्म है वह पांच प्रकार का है औदारिकशरीरनामकर्म, वैक्रियिकशरीरनामकर्म, आहारकशरीरनामकर्म, तैजसशरीरनामकर्म और कार्मणशरीरनामकर्म,। (ध. 6/68)

औदारिक शरीरनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए पोग्गलक्खंधा जीवेणोगाढ़देसट्ठिदा रस रुहिर-मांस-मेदट्ठि-मज्ज-सुक्कसहावओरालियसरीरसरुवेण परिणमंति तस्स ओरालिय सरीरमिदि सण्णा।

जिस कर्म के उदय से जीव के द्वारा अधिष्ठित देश में स्थित आहार वर्गणा के पुद्गल स्कंध रस, रुधिर, मांस, मेदा (चर्बी), अस्थि, मज्जा और शुक्र स्वभाव वाले औदारिक शरीर के स्वरूप से परिणत होते हैं, उस कर्म की 'औदारिक शरीर' यह संज्ञा है। (ध. 6/69)

उदारः पुरुः महानित्यार्थः, तत्र भवं शरीरमौदारिकम्।

उदार, पुरु और महान् ये एक ही अर्थ के वाचक हैं। उसमें जो शरीर उत्पन्न होता है उसे औदारिक शरीर कहते हैं। (ध. 1/290)

वैक्रियिक शरीरनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाएखंधा अणिमादि अट्ठगुणो वलक्खियसुहासुहप्पयवेउव्वियसरीर सरूवेण परिणमंति तस्स वेउव्वियसरीरमिदि सण्णा।

जिस कर्म के उदय से आहारवर्गणा के स्कंध अणिमा आदि गुणों से उपलक्षित शुभाशुभात्मक वैक्रियिक शरीर के स्वरूप से परिणत होते है, उस कर्म की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वैक्रियिक शरीर' यह संज्ञा है। (ध. 6/69)

अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणुमहच्छरीरविधिकरणं विक्रिया, सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम्।

अणिमा आदि आठ गुणों के ऐश्वर्य के सम्बन्ध से एक, अनेक, छोटा, बड़ा आदि नाना प्रकार का शरीर करना विक्रिया है। यह विक्रिया जिस शरीर का प्रयोजन है वह वैक्रियिक शरीर है। (स.सि. 2/36)

आहारक शरीर

जस्स कम्मस्स उदएण आहारवग्गणाए खंधा आहारसरीर सरूवेण परिणमंति तस्स आहार सरीरमिदि सण्णा।

जिस कर्म के उदय से आहार वर्गणा के स्कंध आहार शरीर के स्वरूप से परिणत होते हैं, उस कर्म के 'आहार शरीर' यह संज्ञा है। (ध. 6/69)

आहरति आत्मसात्करोति सूक्ष्मानर्थाननेनेति आहारः।

जिसके द्वारा आत्मा सूक्ष्म पदार्थों को ग्रहण करता है, अर्थात् आत्मसात् करता है उसे आहारक शरीर कहते हैं। (ध. 1/294)

णिण्हा धवला सुगंधा सुट्ठुसुंदरा त्ति ... अप्पडिहया सुहुमा णाम। आहारदव्वाणं मज्झे णिउणदरं णिण्णदरंखंधं आहारसरीरणिप्पायणट्ठं आहारदि घेण्हदि त्ति आहारयं।

निपुण अर्थात् अण्हा और मृदु, स्निग्ध अर्थात् धवल, सुगन्ध, सुष्ठु और सुन्दर ... अप्रतिहतका नाम सूक्ष्म है। आहार द्रव्यों में से आहारक शरीर को उत्पन्न करने के लिए निपुणतर और स्निग्धतर स्कन्ध को आहरण करता है अर्थात् ग्रहण करता है, इसलिए आहारक कहलाता है।

(ध. 14/327)

सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसंयमपरिजिहीर्षया वा प्रमत्तसंयतेनाह्रियते निर्वर्त्यते तदित्याहारकम्।

सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान करने के लिए या असंयम को दूर करने की इच्छा से प्रमत्तसंयम जिस शरीर की रचना करता है वह आहारक शरीर है।

(स.सि. 2/36)

तैजस शरीर नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण तेजइयवग्णक्खंधा णिस्सरणाणिस्सरण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थापसत्थप्पयतेयासरीरसरुवेण परिणमंति तं तेयासरीरं णाम, कारणे कज्जुवयारादो।

जिस कर्म के उदय से तैजस वर्गणा के स्कंध निस्सरण अनिस्सरणात्मक और प्रशस्त अप्रशस्तात्मक तैजस शरीर के स्वरूप से परिणत होते हैं, वह कारण में कार्य के उपचार से तैजस शरीर नामकर्म कहलाता है।

(ध. 6/69)

शरीरस्कन्धस्य पद्मरागमणिवर्णस्तेजः, शरीरान्निर्गतरश्मिकलापःप्रभा, तत्र भवं तैजसं शरीरम्।

शरीर स्कन्ध के पद्मराग मणि के समान वर्णका नाम तेज है। तथा शरीर से निकली हुई रश्मि कलापका नाम प्रभा है। इसमें जो हुआ है वह तैजस शरीर है। तेज और प्रभागुण से युक्त तैजस शरीर है ।

(ध. 14/327-328)

यत्तेजोनिमितं तेजसि वा भवं तत्तैजसम्।

जो दीप्ति का कारण है या तेज में उत्पन्न होता है उसे तैजस शरीर कहते हैं।

(स.सि. 2/36)

कार्मण शरीर नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदओ कुंभंडफलस्स वेंटोव्व सव्वकम्मासयभूदो तस्स कम्मइयसरीरमिदि सण्णा।

जिस कर्म का उदय कूष्मांडफल (कुमडा का फल) के वेंट के समान सर्व कर्मों का आश्रयभूत हो, उस कर्म की 'कार्मण शरीर' यह संज्ञा है।

(ध. 6/69)

कम्मेव च कम्म-भवं कम्मइयं तेण .. ।

ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म स्कन्ध को कार्माण शरीर कहते हैं, अथवा जो कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न होता है उसे कार्मण शरीर कहते हैं । (ध 1/297)

कर्मणां कार्य कार्मणम्।

कर्मों का कार्य कार्मण शरीर है। (स.सि. 2/36)

शरीर बंधन नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवेण संबद्धाणं वग्गणाणं अण्णोण्णं संबंधो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होदि तं कम्मं सरीरबंधणणामं।

जिस कर्म के उदय से जीव के साथ संबंध को प्राप्त हुई वर्गणाओं का परस्पर संबंध होता है, वह शरीर बंधन नामकर्म है। (ध. 13/364)

सरीरट्ठमागयाणं पोग्गलक्खंधाणं जीव संबद्धाणं जेहि पोग्गलेहि जीव-संबद्धेहि पत्तोदएहि परोप्परं बंधो कीरइ तेसिं पोग्गलक्खंधाणं सरीर-बंधण सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो कत्तारणिद्देसादो वा।

शरीर के लिये आये हुए, जीव सम्बद्ध पुद्गल स्कंधों का जिन जीव सम्बद्ध और उदय प्राप्त पुद्गलों के साथ परस्पर बंध किया जाता है उन पुद्गल स्कंधों की 'शरीर बंधन' यह संज्ञा कारण में कार्य के उपचार से, अथवा कर्तृ निर्देश से है। (ध. 6/52-53)

शरीरनामकर्मोदयवशादुपात्तानां पुद्गलानामन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्बन्धननाम।

शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त हुए पुद्गलों का अन्योन्य प्रदेश संश्लेष जिसके निमित्त से होता है वह बन्धन नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - यदि शरीरबंधननामकर्म जीवके न हो, तो वालुका द्वारा बनाये गये पुरुष-शरीर (पुतला) के समान जीवका शरीर होगा, क्योंकि, परमाणुओं का परस्परमें बंध नहीं है। (ध. 6/53)

शरीर बंधननामकर्म के भेद

जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं, ओरालिय सरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजासरीरबंधणणामं कम्मइयसरीर बंधणणामं चेदि।

जो शरीर बंधन नामकर्म है वह पांच प्रकार का है - औदारिक शरीरबंधन नामकर्म, वैक्रियिकशरीर बंधननामकर्म, आहारकशरीरबंधननामकर्म, तैजसशरीरबंधननामकर्म और कार्मणशरीरबंधननामकर्म। (ध. 6/70)

औदारिक शरीरबंधन नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण ओरालिय सरीर परमाणू अण्णोण्णेण बंधमा-गच्छंति तमोरालियसरीरबंधणं णाम।

जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर के परमाणु परस्पर बंध को प्राप्त होते हैं, उसे औदारिक शरीर बंधन नामकर्म कहते हैं। (ध. 6/70)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्रौदारिकशरीराकारेण परिणतपुद्गलानां परस्परसंश्लेषरूपो बन्धो यतो भवति तदौदारिकशरीरबन्धननाम।

जिसके कारण औदारिक शरीर के आकार रूप से परिणत पुद्गलों का परस्पर संश्लेष रूप बन्ध होता है, वह औदारिक शरीर बन्धन नाम कर्म है।

(क.प्र./22)

वैक्रियिक शरीर बंधन नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण वेउव्वियसरीर परमाणू अण्णोण्णेण बंधमागच्छंति तं वेउव्वियसरीरबंधणं णाम।

जिस कर्म के उदय से वैक्रियिक शरीर के परमाणु परस्पर बंध को प्राप्त होते हैं, उसे वैक्रियिक शरीर बंधन नामकर्म कहते हैं। (ध. 6/70 आ)

आहारक शरीर बंधन नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण आहारसरीर परमाणू अण्णोण्णेण बंधमागच्छंति तं आहारसरीर बंधणं णाम।

जिस कर्म के उदय से आहार शरीर के परमाणु परस्पर बंध को प्राप्त होते हैं, उसे आहारशरीरबंधननामकर्म कहते हैं। (ध. 6/70 आ)

तैजस शरीर बंधन नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण तेजासरीर परमाणू अण्णोण्णेण बंधमागच्छंति तं तेजासरीर बंधणं णाम।

जिस कर्म के उदय से तैजस शरीर के परमाणु परस्पर बंध को प्राप्त होते हैं, उसे तैजसशरीरबंधननामकर्म कहते हैं। (ध. 6/70 आ)

कार्मण शरीर बंधन नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण कम्मइय सरीर परमाणू अण्णोण्णेण बंधमागच्छंति तं कम्मइय सरीरबंधणं णाम।

जिस कर्म के उदय से कार्मण शरीर के परमाणु परस्पर बंध को प्राप्त होते हैं, उसे कार्मण शरीर बंधन नामकर्म कहते हैं। (ध. 6/70 आ)

शरीर संघात नामकर्म

जेहिं कम्मक्खंधेहि उदय पत्तेहि बंधणणाम कम्मोदएण बंधमागयाणं सरीर पोग्गलक्खंधाणं मट्ठत्तं कीरदे तेसिं सरीर संघाद सण्णा।

उदय को प्राप्त जिन कर्म स्कंधों के द्वारा बंधननामकर्म के उदय से बंध के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिये आये हुए शरीर संबंधी पुद्गल स्कंधों का मृष्टत्व, अर्थात् छिद्र रहित संश्लेष किया जाता है, उन पुद्गल स्कंधों की 'शरीर संघात' यह संज्ञा है।

(ध. 6/53)

जस्स कम्मस्स उदएण अण्णोण्ण सबंद्धाणं वग्गणाणं मट्ठत्तं होदि तं सरीरसंघादणामं, अण्णहा तिलमोअओ व्व विसंतुल सरीर होज्ज.

जिस कर्म के उदय से परस्पर संबंध को प्राप्त हुई वर्गणाओं में मसृणता आती है वह शरीर संघात नामकर्म है, इसके बिना शरीर तिल के मोदक के समान विसस्थुल (अव्यवस्थित) हो जायेगा। (ध. 13/364)

यदुदयादौदारिकादिशरीराणां विवरविरहितान्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम।

जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों की छिद्र रहित होकर परस्पर प्रदेशों के अनुप्रवेश द्वारा एकरूपता आती है वह संघात नामकर्म है।

(स.सि. 8/11)

विशेष - यदि शरीरसंघातनामकर्म जीवके न हो, तो तिलके मोदकके समान अपुष्ट शरीरवाला जीव हो जावे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, तिलके मोदकके समान संश्लेष-रहित परमाणुओंवाला शरीर पाया नहीं जाता।

(ध. 6/53)

शरीर संघातनामकर्म के भेद

जं तं सरीरसंघादणामकम्मं तं पंचविहं ओरालियसरीरसंघादणामं वेउव्वियसरीरसंघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेयासरीरसंघादणामं कम्मइयसरीरसंघादणामं चेदि।

जो शरीर संघात नामकर्म है वह पांच प्रकार का है - औदारिक शरीर संघात नामकर्म, वैक्रियिकशरीरसंघातनामकर्म, आहारक-शरीरसंघात-नामकर्म, तैजसशरीरसंघातनामकर्म और कार्मणशरीर-संघातनामकर्म।

(ध 6 /70)

औदारिक शरीर संघात नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण ओरालियसरीरक्खंधाणं सरीरभावमुवगयाणं बंधणणाम कम्मोदएण एगबंधणबद्धाण मट्ठत्तं होदि तमोरालिय सरीर-संघादंणाम।

शरीर भाव को प्राप्त तथा बंधननामकर्म के उदय से एक बंधनबद्ध औदारिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर के स्कंधों का जिस कर्म के उदय से छिद्र राहित्यपना होता है, वह औदारिक शरीर संघात नामकर्म है। (ध-6/70)

तत्रौदारिकशरीराकारेण परिणतपरस्परबद्धपुद्गलानां तदाकारवैषम्याभावकारणमौदारिकशरीरसंघातनामकर्म।

औदारिक शरीर के आकाररूप से परिणत परस्पर बद्ध पुद्गलों के तदाकार वैषम्य के अभाव का कारण औदारिक शरीर संघात नाम कर्म है।

(क.प्र./23)

वैक्रियिक शरीर संघात नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण वेउव्वियसरीरक्खंधाणं सरीरभावमुवगयाणं बंधण णाम कम्मोदएण एगबंधणबद्धाण मट्ठत्तं होदि तं वेउव्वियसरीर संघादं णाम।

शरीर भाव को प्राप्त तथा बंधन नामकर्म के उदय से एक बन्धन बद्ध वैक्रियिक शरीर के स्कंधों का जिस कर्म के उदय से छिद्र राहित्यपना होता है। वह वैक्रियिक शरीर संघातनामकर्म है। (ध 6/70 आ)

आहारक शरीर संघात नामकर्म

जस्स कम्मस्य उदएण आहारसरीरक्खंधाणं सरीरभावमुवगयाणं बंधणणाम कम्मोदएण एगबंधणबद्धाण मट्ठत्तं होदि तं आहारसरीरसंघादं णाम।

शरीर भाव को प्राप्त तथा बंधन नामकर्म के उदय से एक बंधन बद्ध आहारक शरीर के स्कंधों का जिस कर्म के उदय से छिद्र राहित्य पना होता है, वह आहारशरीर संघात नामकर्म है। (ध 6/70 आ)

तैजस शरीर संघात नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण तेयासरीरक्खंधाणं सरीर भावमुवगयाण बंधणणाम कम्मोदएण एगबंधणबद्धाण मट्ठत्तं होदि तं तेयासरीर संघादं णाम।

शरीर भाव को प्राप्त तथा बंधन नामकर्म के उदय से एक बंधनबद्ध तैजस शरीर के स्कंधों का जिस कर्म के उदय से छिद्र राहित्यपना होता है, वह तैजस शरीर संघात नामकर्म है। (ध6/70 आ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्मणशरीर संघात नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण कम्मइयसरीरक्खंधाणं सरीरभावमुवगयाणं बंधणणाम कम्मोदएण एगबंधणबद्धाण मट्ठत्तं होदि तं कम्मइय-सरीरसंघादं णाम

शरीर भाव को प्राप्त तथा बंधन नामकर्म के उदय से एक बंधन बद्ध कार्मण शरीर के स्कंधों का जिस कर्म के उदय से छिद्र राहित्यपना होता है, वह कार्मण शरीर संघात नामकर्म है। (ध 6/70आ)

शरीरसंस्थाननामकर्म

जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जाइकम्मोदयपरतंतेण सरीरस्स संठाणं कीरदे तं सरीरसंठाणं णाम।

जातिनामकर्म के उदय से परतंत्र जिन कर्म स्कंधों के उदय से शरीर का आकार बनता है, वह शरीर संस्थान नामकर्म है। (ध 6/53)

जस्स कम्मस्स उदएण समचउरससादिय-खुज्ज वामण-हुंड-णग्गोहपरिमंडल संट्ठाणं सरीरं होज्ज तं सरीरसंठाणणामं।

जिस कर्म के उदय से समचतुरस्र, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुंड और न्यग्रोध-परिमण्डल संस्थान वाला शरीर होता है। वह शरीर संस्थान नामकर्म है। (ध 13/364)

यदुदयादौदारिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम।

जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों की आकृति बनती है वह संस्थान नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - (यदि शरीरसंस्थाननामकर्म स्वीकार नहीं किया जाय तो) शरीर-संस्थाननामकर्म के अभाव में जीव का शरीर आकृति-रहित हो जायेगा। (ध. 6/53)

शरीरसंस्थाननामकर्म के भेद

जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं समचउरससरीरसंठाणणामं, णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं, सादियसरीरसंठाणणामं, खुज्जसरीर-संठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि।

जो शरीर संस्थान नामकर्म हैं वह छह प्रकार हैं - समचतुरस्रशरीरसंस्थान नामकर्म, न्यग्रोधपरिमंडल शरीरसंस्थान नामकर्म, स्वातिशरीर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्थाननामकर्म, कुब्जशरीरसंस्थाननामकर्म, वामनशरीरसंस्थाननामकर्म और हुंडशरीरसंस्थाननामकर्म। (ध 6/70)

समचतुरस्रशरीरसंस्थान नामकर्म

चतुरं शोभनम्, समन्ताच्चतुरं समचतुरम्, समानमानोन्मानमित्यर्थः। समचतुरं च तत् सरीरसंस्थानं च समचतुरशरीरसंस्थानम्। तस्य संस्थानस्य निर्वर्तकं यत् कर्म तस्याप्येषैव संज्ञा, कारणे कार्य्योपचारात्।

चतुर का अर्थ शोभन है, सब ओर से चतुर समचतुर कहलाता है। समान मान और उन्मानवाला, वह उक्त कथन का तात्पर्य है। समचतुर ऐसा जो शरीरसंस्थान वह समचतुरशरीर संस्थान है। उस संस्थान का निर्वर्तक जो कर्म है उसकी भी कारण में कार्य का उपचार करने से यही संज्ञा होती है। (ध 13/368)

तत्र यतः सर्वत्र दशतालललक्षणलक्षितप्रशस्तसंस्थानशरीराकारो भवति तत्समचतुरस्रसंस्थानं नाम।

जिससे सब जगह दशताल (समान माप) लक्षणयुक्त प्रशस्त संस्थान सहित शरीर का आकार होता है, वह समचतुरस्र संस्थान है। (क.प्र./24)

तत्रोर्ध्वाधोमध्येषु समप्रविभागेन शरीरावयवसन्निवेशव्यवस्थापनं कुशलशिल्पिनिर्वर्तितसमस्थितिचक्रवत् अवस्थानकर समचतुरस्रसंस्थाननाम।

ऊपर नीचे मध्य में कुशल शिल्पी के द्वारा बनाये गये समचक्र की तरह समान रूप से शरीर के अवयवों की रचना होना आकार बनना समचतुरस्र संस्थान है। (रा.वा. 8/11)

ऊर्ध्वाधोमध्येषु समप्रविभागेन शरीरावयवसन्निवेशव्यवस्थापनं कुशलशिल्पिनिर्वर्तितसमस्थितचक्रवदवस्थानकरं समचतुरस्रसंस्थाननाम।

जिसके उदय से ऊपर, नीचे, मध्य में समविभाग से शरीर के अवयवों का सन्निवेश व्यवस्थित होता है, जैसे कि कुशल शिल्पि द्वारा रचित समस्थित चक्र होता है, इस तरह सुन्दर आकार को करने वाला समचतुरस्र संस्थान नाम कर्म है। (त.वृ. भा.8/11)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नामकर्म

न्यग्रोधो वटवृक्षः समन्तान्मंडलं परिमण्डलं, न्यग्रोधस्य परिमण्डलमिव, परिमण्डलं यस्य सरीरसंस्थानस्य तन्न्यग्रोध परिमण्डल शरीर संस्थानं नाम। अधस्तात् श्लक्ष्णं उपरिविशालं यच्छरीरं तन्न्यग्रोधपरिमण्डलशरीर संस्थानं नाम।

न्यग्रोध का अर्थ वट का वृक्ष है और परिमण्डल का अर्थ है सब ओर का मण्डल। न्यग्रोध के परिमण्डल के समान जिस शरीर संस्थान का परिमण्डल होता है वह न्यग्रोधपरिमण्डल शरीर संस्थान है। जो शरीर नीचे सूक्ष्म और ऊपर विशाल होता है वह न्यग्रोधपरिमण्डल शरीर संस्थान कहलाता है। (ध-13/368)

यत उपरि विस्तीर्णोऽधः संकुचितशरीराकारो भवति तन्न्यग्रोधसंस्थानं नाम।

जिसके कारण ऊपर विस्तीर्ण तथा नीचे संकुचित शरीराकार होता है, वह न्यग्रोधसंस्थान है। (क.प्र./24)

नाभेरुपरिष्टाद् भूयसो देहसन्निवेशस्याधस्ताच्चाल्पीयसो जनकं न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थाननाम, न्यग्रोधाकारसमताप्रापितान्वर्थम्।

न्यग्रोध (बड़) वृक्ष के समान नाभि के ऊपर शरीर में स्थूलत्व और नीचे के भाग में लघु प्रदेशों की रचना होना न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान है। इसमें न्यग्रोध (वटवृक्ष) के समान देह की रचना होती है, इसलिये इसका सार्थक नाम न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान है। (रा.वा. 8/11)

स्वातिशरीरसंस्थान

स्वातिर्वल्मीकः शाल्मलिर्वा, तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्यशरीरस्य तत् स्वाति शरीर संस्थानम्। अहो विसालं उवरि सण्णमिदि जं उत्तं होदि।

स्वाति नाम वल्मीक या शाल्मलीवृक्ष का है। उसके आकार के समान आकार जिस शरीर का है, वह स्वाति शरीर संस्थान है।अर्थात् यह शरीर नाभि से नीचे विशाल और ऊपर सूक्ष्म या हीन होता है। (ध. 6/71)

यतोऽधो विस्तीर्ण उपरि संकुचितशरीराकारो भवति तत्स्वाति संस्थानं नाम। स्वातिर्वल्मीकं तत्सादृश्यात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसके कारण नीचे विस्तीर्ण तथा ऊपर संकुचित शरीर का आकार होता है, वह वल्मीक (वांमी) सदृश होने के कारण स्वातिसंस्थान कहलाता है। (क.प्र./24)

तद्विपरीतसंनिवेशकरं स्वातिसंस्थाननाम वल्मीकतुल्याकाराम्।
न्यग्रोध से उलटा ऊपर लघु और नीचे भारी, सर्प की वामी के समान आकृति वाला संस्थान हैं। (रा.वा 8/11)

कुब्जशरीर संस्थान नामकर्म

कुब्जस्य शरीरं कुब्जशरीरम् तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तत्कुब्जशरीरसंस्थानम्। जस्स कम्मस्य उदएण साहाणं दीहत्तं मज्झस्स रहस्सत्तं च होदि तस्य खुज्जसरीरसंठाणमिदि सण्णा।
कुबडे शरीर को कुब्जशरीर कहते हैं। उसके समान संस्थान जिस शरीर का होता है, वह कुब्ज शरीर संस्थान है। जिस कर्म के उदय से शाखाओं के दीर्घता और मध्यम भाग के ह्रस्वता होती है, उसकी 'कुब्ज शरीर संस्थान' यह संज्ञा है। (ध 6 /71)

यतो ह्रस्वः शरीराकारो भवति तत्कुब्जसंस्थानं नाम।
जिसके कारण शरीर का आकार छोटा (कुबड़ा) होता है, वह कुब्जक संस्थान नाम कर्म है। (क.प्र./24)

पृष्ठप्रदेशभाविबहुपुद्गलप्रचयविशेषलक्षणस्य निर्वर्तकं कुब्जसंस्थाननाम।
पीठ पर बहुत पुद्गलों का पिण्ड हो जाना अर्थात् कुबड़ेपन को बनाने वाला कर्म कुब्जक संस्थाननामकर्म है। (रा.वा. 8/11)

वामन शरीर संस्थान नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण साहाणं रहस्सत्तं कायस्स दीहत्तं च होदि तं वामणसरीर संठाणं होदि।
जिस कर्म के उदय से शाखाओं के ह्रस्वता और शरीर के दीर्घता होती है वह वामन शरीर संस्थान नामकर्म है। (ध 6/71-72)

वामनशरीरस्य संस्थानं वामनशरीरसंस्थानम्। ह्रस्वशाखं वामनशरीरम्।
वामन शरीर का जो संस्थान है वह वामनशरीर संस्थान है, अर्थात् जिसकी शाखायें ह्रस्व हो वह वामन शरीर है। (ध 13 /369)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यतो दीर्घहस्तपादा ह्रस्वकबन्धश्च शरीराकारो भवति तद्वामनसंस्थानं नाम।

जिसके कारण हाथ और पैर लम्बे तथा कबन्ध (धड़) छोटा होता है, उसे वामन संस्थान कहते हैं। (क.प्र./25)

सर्वाङ्गोपाङ्गह्रस्वव्यवस्थाविशेषकारणं वामनसंस्थाननाम।

सभी अंग उपांगों को छोटा बनाने में जो कारण होता है वह वामन संस्थान है। (रा.वा. 8/11)

हुण्डशरीर संस्थान नामकर्म

विषमपाषाण मृतदृतिवत् समन्तो विषमं हुण्डम् हुंडं च तत् शरीरसंस्थानम् हुंडसरीरसंस्थानम्।

विषम पाषाणों से भरी हुई मशक के समान जो सब ओर से विषम होता है वह हुण्ड कहलाता है। हुण्ड ऐसा जो शरीर संस्थान वह हुण्डशरीरसंस्थान है। (ध 13/369)

जस्स कम्मस्स उदएण पुव्वुत्तपंचसंठाणेहिंतो वदिरित्तमण्णसंठाण मुप्पज्जइ एक्कत्तीस भेदभिण्णं तं हुंडसंठाण सण्णिदं होदि।

जिस कर्म के उदय से पूर्वोक्त पांच संस्थानों से व्यतिरिक्त इक्तीस भेद भिन्न अन्य संस्थान उत्पन्न होता है, वह शरीर हुंडसंस्थान संज्ञा वाला है।

(ध 6/72

यतः पाषाणपूर्णगोणिवत् ग्रन्थ्यादिविषमशरीराकारो भवति तद् हुण्डसंस्थानं नाम।

जिसके कारण पत्थर भरी हुई गौनकी तरह, (बोरी के समान) ग्रन्थि आदि से युक्त विषम शरीराकार होता है, उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं।

(क.प्र./25)

सर्वाङ्गोपाङ्गानां हुण्डसंस्थित्वात् हुण्डसंस्थाननाम।

सभी अंग और उपांगों का बेतरतीब (अनिश्चित आकार) हुण्ड की तरह रचना करने वाला होने से हुंडक संस्थान नामकर्म कहलाता है।

(रा.वा. 8/11)

'शरीरांगोपांग नामकर्म'

जस्स कम्मक्खंधस्सुदएणसरीरस्संगोवंगणिप्फत्ती होज्ज तस्स कम्म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खंधस्स सरीरंगोवंगं णाम।

जिस कर्म स्कंध के उदय से शरीर के अंग उपांगों की, निष्पत्ति होती है उस कर्म स्कंध का 'शरीरांगोपांग' यह नाम है। (ध 6/54)

यदुदपादङ्गोपाङ्गविवेकस्तदङ्गोपाङ्गनाम।

जिसके उदय से अंगोपांगका भेद होता है वह अंगोपांग नाम कर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - इस नामकर्म के नहीं मानने पर आठों अंगों का और उपांगों का अभाव हो जायेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, अंग और उपांगों का अभाव पाया नहीं जाता।

शरीर में दो पैर, दो हाथ, नितम्ब (कमर के पीछे का भाग) पीठ, हृदय और मस्तिष्क ये आठ अंग होते हैं। इनके सिवाय अन्य (नाक, कान, आँख इत्यादि) उपांग होते हैं। सिर में मूर्धा, कपाल, मस्तक, ललाट, शंख --- ---तालु और जीभ आदि उपांग होते हैं। (ध 6/54)

शरीररांगोपांगनामकर्म के भेद -

जं तं सरीर अंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीर अंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणाम चेदि।

जो शरीर अंगोपांग नामकर्म है वह तीन प्रकार का है - औदारिकशरीर अंगोपांग नामकर्म वैक्रियिकशरीर अंगोपांगनामकर्म और आहारकशरीर - अंगोपांगनामकर्म। (ध 6/72)

विशेष - तेजस और कार्मणशरीरके अंगोपांग नहीं होते हैं, क्योंकि, उनके हाथ, पांव, गला आदि अवयवों का अभाव है। (ध. 6/73)

औदारिक शरीरअंगोपांगनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण ओरालिय सरीरस्स अंगोवंग पच्चंगाणि उप्पज्जंति तं ओरालिय सरीर अंगोवंगणामं।

जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर के अंग, उपांग और प्रत्यंग उत्पन्न होते हैं, वह औदारिक शरीर अंगोपांग नामकर्म हैं। (ध 6/73)

वैक्रियिक शरीर अंगोपांगनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण वेउव्वियसरीरस्स अंगोवंग पच्चंगाणि उप्पज्जंति तं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस कर्म के उदय से वैक्रियिक शरीर के अंग, उपांग और प्रत्यंग उत्पन्न होते हैं, वह वैक्रियिक शरीर अंगोपांग नामकर्म है। (ध 6/73 आ)

आहारक शरीर अंगोपांग नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण आहार सरीरस्स अंगोवंग पच्चंगाणि उप्पज्जंति तं आहार सरीरअंगोवंगणामं।

जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर के अंग, उपांग और प्रत्यंग उत्पन्न होते हैं, वह आहारक शरीर अंगोपांग नामकर्म है। (ध 6/73 आ)

शरीर संहनन नाम कर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरे हड्ड संधीणं णिप्फत्ती होज्ज, तस्स कम्मस्स संघडणमिदि सण्णा।

जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डी और उसकी संधियों अर्थात् संयोग स्थानों की निष्पत्ति होती है, उस कर्म की 'संहनन' यह संज्ञा है।

(ध 6/54)

यस्योदयादस्थिबन्धनविशेषो भवति तत्संहनननाम।

जिसके उदय से अस्थियों का बन्धन विशेष होता है वह संहनन नामकर्म है।

(स.सि. 8/11)

विशेष - इस कर्म के अभाव में शरीर देवों के शरीर के समान संहनन रहित हो जायेगा।

शंका - यदि संहनन कर्म के अभाव में शरीर देव शरीर के समान संहनन होता है तो हो जाने दो क्या हानि है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्य के शरीरों में हाडों का समूह पाया जाता है। (ध 6/54)

शरीरसंहनन नामकर्म के भेद

जं तं सरीरसंघंडणणामकम्मं तं छव्विहं वज्जरिसहवइरणारायण-सरीरसंघडणणामं, वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायणसरीर-संघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं खीलियसरीर-संघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामं चेदि।

जो शरीरसंहननामकर्म है वह छह प्रकार का हैं - वज्र ऋषभवज्रनाराच शरीरसंहननामकर्म, वज्रनाराचशरीर संहननामकर्म, नाराचशरीर संहनन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामकर्म, अर्धनाराचशरीर संहनननामकर्म, कीलक शरीर सहंनन नामकर्म और असंप्राप्तासृपाटिका शरीर सहंननामकर्म। (ध. 6/73)

वज्रऋषभवज्रनाराच शरीर सहंनन नामकर्म

सहंननमस्थिसंचयः, ऋषभो वेष्टनम् वज्रवदभेद्यत्वाद्वज्रऋषभः वज्रवन्नाराचः वज्रनाराचः, तौ द्वावपि यस्मिन् वज्रशरीर संहनने तद्वज्रऋषभ वज्रनाराचशरीर संहननम्। जस्स कम्मस्स उदएण वज्जहड्डाइं वज्जवेट्ठेण वेट्ठियाइं वज्जणाराएण खीलियाइं च होंति तं वज्जरिसहवइरणारायणसरीर संघडणमिदि।

हड्डियों के सचंय को सहनंन कहते हैं। वेष्टन को ऋषभ कहते हैं। वज्र के समान अभेद्य होने से 'वज्रऋषभ' कहलाता हैं। वज्र के समान जो नाराच हैं वह वज्रनाराच कहलाता हैं। ये दोनों ही अर्थात् वज्र ऋषभ और वज्रनाराच, जिस वज्र शरीर सहंनन में होते हैं, वह वज्र ऋषभ वज्रनाराच शरीर सहंनन हैं। जिस कर्म के उदय से वज्रमय हड्डियाँ वज्रमय वेष्टन से वेष्टित और वज्रमय नाराच से कीलित होती हैं। वह वज्रऋषभ वज्रनाराच शरीर सहंनन हैं। (ध-6/73)

तत्र वज्रवत् स्थिरास्थिऋषभो वेष्टनं वज्रवत् वेष्टनकीलकबन्धो यतो भवति तद्वज्रवृषभनाराचसंहननं नाम।

जिसके कारण वज्र की तरह स्थिर अस्थि और ऋृषभ वेष्टन तथा वज्र की तरह वेष्टन और कीलक बन्ध होता है, उसे वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं। (क.प्र./26)

वज्रनाराचशरीरसंहनन नामकर्म

एसो चेव हड्डबंधो वज्जरिसह वज्जिओ जस्स कम्मस्य उदएण होदि तं कम्मं वज्जणारायण शरीर सघंडणमिदि भण्णदे।

यह पूर्वोक्त अस्थिबंध ही जिस कर्म के उदय से वज्रऋषभ से रहित होता हैं, वह कर्म 'वज्रनाराच शरीर सहंनन' इस नाम से कहा जाता है।

(ध-6/73)

यतो वज्रवत् स्थिरास्थिकीलकबन्धसामान्यवेष्टनं च भवति तद्वज्रनाराचसंहननम्।

जिसके कारण वज्र की तरह स्थिर अस्थि तथा कीलक बन्ध होता है तथा वेष्टन सामान्य होता है। उसे वज्रनाराच संहनन कहते हैं। (क.प्र./27)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाराच शरीर सहंनन नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण वज्जविसेसणरहिदणाराएण खीलियाओ हड्डसंधीओ हवंति तं णारायणसरीरसघंडणं नाम।

जिस कर्म के उदय से वज्र विशेषण से रहित नाराच से कीलित हड्डियों की संधियाँ होती हैं, वह नाराच शरीर सहंनन नामकर्म हैं। (ध6/74)

यतो वज्रवत् स्थिरास्थिबन्धसामान्यकीलिकावेष्टनमेतद्द्वयं भवति तन्नाराचसंहननं नाम।

जिसके कारण वज्र की तरह स्थिर अस्थिबन्ध तथा सामान्य कीलक और वेष्टन होते हैं, उसे नाराच संहनन कहते हैं। (क.प्र./27)

अर्धनाराच शरीर सहंनन नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण हड्डसंधीओ णाराएण अद्धविद्धाओ हवंति तं अद्धणारायणसरीर सघंडणं णाम।

जिस कर्म के उदय से हाड़ों की संधियां नाराच से आधी विधी हुई होती हैं, वह अर्धनाराच शरीर सहंनन नामकर्म हैं। (ध-6/74)

यतस्सामान्यास्थिबन्धार्धकीलिका भवति तदर्धनाराचसंहननं नाम।

जिसके कारण सामान्य अस्थिबन्ध अर्ध कीलित होता है, उसे अर्धनाराच संहनन कहते हैं। (क.प्र./27)

कीलक शरीर संहनन नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण अवज्जहड्डाइं खीलियाइं हवंति तं खीलियसरीरसंघडणं णाम।

जिस कर्म के उदय से वज्ररहित हड्डियाँ और कीलें होती हैं ; वह कीलक शरीर संहननामकर्म है। (ध 6 /74)

यतः कीलित इव सामान्यास्थिबन्धो भवति तत्कीलितसंहननं नाम।

जिसके कारण कीलित की तरह सामान्य अस्थिबन्ध होता है, वह कीलित संहनन है। (क.प्र./27)

असंप्राप्तासृपाटिका शरीरसहंननामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण अण्णोण्णमसंपत्ताइं सरिसिवहड्डाइं व छिराबद्धाइं हड्डाइं हवंति तं असंपत्तसेवट्टसरीर संघडणं णाम।

जिस कर्म के उदय से सरीसृप अर्थात् सर्प की हड्डियों के समान परस्पर में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंप्राप्त और शिराबद्ध हड्डियां होती हैं वह असंप्राप्तासृपाटिका शरीर-संहनन नामकर्म हैं। (ध 6/74)

स्नायुभिर्बद्धास्थि असंप्राप्तसरिसृपादिसहंननम्।

जिसमें स्नायुओं से हड्डियाँ बंधी होती हैं वह असंप्राप्तसरीसृपादि शरीर संहनन हैं। (ध 13/370)

यतः परस्परासंबद्धास्थिबन्धो भवति तदसंप्राप्तसृपाटिकासंहननं नाम ।

जिसके कारण अस्थिबन्ध परस्पर असम्बद्ध होता है, उसे असम्प्राप्त-सृपाटिकासंहनन कहते हैं। (क.प्र./28)

अन्तरसंप्राप्तपरस्परास्थिसन्धि बहिःसिरास्नायुमांसघटितम् असंप्राप्तसृपाटिका संहननम्।

जिसमें भीतर हड्डियों का परस्पर बन्ध न हो मात्र बाहर से वे सिरा स्नायु मांस आदि लपेट कर संघटित की गयी हों वह असंप्राप्तसृपाटिका संहनन है। (रा.वा 8/11)

'वर्ण नामकर्म'

जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे वण्णणिप्फत्ती होदि तस्सकम्मक्खंध स्सवण्णसण्णा।

जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में वर्ण की उत्पत्ति होती है, उस कर्म स्कंध की 'वर्ण' संज्ञा है। (ध 6 /55)

तत्तत्स्वस्वशरीराणां श्वेतादिवर्णान्यत्करोति तद्वर्णनाम।

अपने-अपने शरीर का श्वेत आदि वर्ण जिसके कारण होता है, उसे वर्ण नाम कहते हैं। (क.प्र./28)

यद्धेतुको वर्णविभागस्तद्वर्णनाम।

जिसके निमित्त से वर्ण में विभाग होता है वह वर्ण नामकर्म है।

(स.सि. 8/11)

विशेष - इस कर्मके अभाव में अनियत वर्णवाला शरीर हो जाएगा। किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता क्योंकि, भौंरा, कोयल, हंस और बगुला आदिमें निश्चित वर्ण पाये जाते हैं। (ध. 6/55)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णनामकर्म के भेद

जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं, किण्हवण्णणामं, णीलवण्णणामं रुहिरवण्णणामं, हालिद्दवण्णणामं, सुक्किलवण्णणामं चेदि।

जो वर्णनामकर्म है वह पाँच प्रकार का है - कृष्णवर्णनामकर्म, नीलवर्णनामकर्म, रुधिरवर्णनामकर्म, हारिद्रवर्णनामकर्म और शुक्लवर्णनामकर्म।

(ध 6 / 74)

कृष्णवर्ण नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं किण्हवण्णो उपज्जदि तं किण्हवण्णं णाम।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का कृष्णवर्ण उत्पन्न होता है, वह कृष्ण वर्णनामकर्म है। (ध 6/74)

नीलवर्ण नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं णीलवण्णो उपज्जदि तं णीलवण्णं णाम।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का नील वर्ण उत्पन्न होता है, वह नीलवर्ण नामकर्म है। (ध 6/74 आ)

रुधिर वर्ण नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीर पोग्गलाणं रुहिरवण्णो उपज्जदि तं रुहिरवण्णं णाम।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का रुधिर वर्ण उत्पन्न होता है, वह रुधिर वर्ण नामकर्म है। (ध 6/74 आ)

हारिद्र वर्ण नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं हालिद्दवण्णो उपज्जदि तं हालिद्दवण्णं णाम।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का हारिद्र वर्ण उत्पन्न होता है, वह हारिद्र वर्ण नाम कर्म है। (ध 6/74आ)

शुक्ल वर्ण नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीर पोग्गलाणं सुक्किलवण्णो उपज्जदि तं सुक्किल वण्णं णाम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का शुक्ल वर्ण उत्पन्न होता है, वह शुक्ल वर्ण नामकर्म है। (ध 6 /74 आ)

गंधनामकर्म

जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जादिंपडिणियदो गंधो उप्पज्जदि तस्स कम्मक्खंधस्स गंधसण्णा, कारणे कज्जुवयारादो।

जिस कर्म स्कंध के उदय से जीव के शरीर में जाति के प्रतिनियतगंध उत्पन्न होती है। उस कर्म स्कंध की 'गंध' यह संज्ञा कारण में कार्य में उपचार से की गई है। (ध 6/55)

जस्स कम्मस्सुदएण दुविहगंध णिप्फत्ती होदि तं गंधणामं।

जिस कर्म के उदय से शरीर में दो प्रकार के गन्ध की उत्पत्ति होती है वह गन्ध नामकर्म है। (ध 13/364)

स्वस्वशरीराणां स्वस्वगन्धं करोति यत्तद् गन्धनाम।

अपने-अपने शरीर की गन्ध जिस कारण होती है, उसे गन्ध नाम कहते हैं। (क.प्र./28)

यदुदयप्रभवो गन्धस्तद्गन्धनाम।

जिसके उदय से गन्ध की उत्पत्ति होती है वह गन्धनामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - यदि गन्धनामकर्म न हो, तो जीवके शरीर की गन्ध-अनियत हो जायेगी।

शंका - यदि गंधनामकर्मके अभाव में जीवके शरीरकी गन्ध अनियत होती है, तो होने दो, क्या हानि है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि हाथी और बाघ आदिमें नियत गन्ध पाई जाती है। (ध. 6/55)

गंध नामकर्म के भेद

जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं, सुरहिगंधं दुरहिगंध चेदि।

जो गंधनामकर्म है वह दो प्रकार का है - सुरभिगंध और दुरभिगंध (ध 6/74)

सुरभिगंध नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला सुअंधा होंति तं सुरहिगंध णाम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गल सुगन्धित होते हैं, वह सुरभिगंध नामकर्म है। (ध पु.6/75)

दुरभिगंध

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला दुग्गंधा होंति तं दुरहिगंधं णाम।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गल दुर्गन्धित होते हैं। वह दुरभिगंध नामकर्म है। (ध प. 6/75)

रस नामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण सरीरे रसणिप्फत्ती होदि तं रसणामं।

जिस कर्म के उदय से शरीर में रस की निष्पत्ति होती है, वह रस नामकर्म है। (ध 13/364)

जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जादिपडिणियदो त्तितादि रसो होज्ज तस्स कम्मक्खंधस्स रससण्णा।

जिस कर्म स्कंध के उदय से जीव के शरीर में जाति के प्रतिनियत तिक्त आदि रस उत्पन्न हो, उस कर्म स्कंध की 'रस' यह संज्ञा है। (ध 6/55)

तत्तत्स्वस्वशरीराणां यत्स्वस्वरसं करोति तद्रसनाम।

अपने-अपने शरीरका जो अपना-अपना रस करता है, उसे रस नाम कर्म कहते हैं। (क.प्र./29)

यन्निमित्तो रसविकल्पस्तद्रसनाम।

जिसके उदय से रस में भेद होता है वह रस नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

रस्यते रसनमात्रं वा रसः।

जो स्वाद रूप होता है या स्वाद मात्र को रस कहते हैं। (स.सि. 5/23)

विशेष - इसकर्म के अभाव में जीव के शरीरमें जाति-प्रतिनियत रस नहीं होगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, नीम, आम और नीबू आदिमें नियत रस पाया जाता है। (ध. 6/55)

रस नामकर्म के भेद

जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं, तित्तणामं कडुवणामं, कसायणामं, अंबणामं महुरणामं चेदि।

जो रसनामकर्म है वह पाँच प्रकार का है। तिक्त नामकर्म, कडुकनामकर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषाय नामकर्म, आम्ल नामकर्म और मधुरनामकर्म। (ध. 6/65)

तिक्तनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला तित्तरसेण परिणमंति तं तित्तं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गल तिक्तरस से परिणत होते हैं वह तिक्तनामकर्म है। (ध 6/75)

कटुकनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला कडुवरसेण परिणमंति तं कडुवं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गल कटुकरस से परिणत होते हैं वह कटुक नामकर्म है। (ध 6/75 आ)

कषायनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला कषायरसेण परिणमंति तं कषायं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गल कषायरस से परिणत होते हैं, वह कषाय नामकर्म है। (ध 6/75आ)

आम्लनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीर पोग्गला अंबरसेण परिणमंति तं अंबंणाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गल आम्लरस से परिणत होते हैं वह आम्ल नामकर्म है। (ध 6/75 आ)

मधुर नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गला महुररसेण परिणमंति तं महुरं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर संबन्धी पुद्गल मधुर रस से परिणत होते हैं वह मधुर नाम कर्म है। (ध 6/75आ)

लवणो नाम रसो लौकिकैः षष्ठोऽस्ति। स मधुररसभेद एवेति परमागमे पृथक्त्वेन नोक्तः, लवणं बिना। इतररसानां स्वादुत्वाभावात्।
लवण नामक छठा रस लोक में माना जाता है। यह मधुर रसका ही भेद है, इसलिए परमागम में अलग से नहीं कहा ; क्योंकि नमक के बिना तो अन्य सभी रस फीके हैं। (क.प्र./29)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्श नामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण सरीरे फास णिप्फत्ती होदि तं फासणामं।

जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श की उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नामकर्म है। (ध 13/364)

जस्स कम्मक्खंधस्स उदएण जीवसरीरे जाइपडिणियदो फासो उप्पज्जदि तस्स कम्मक्खंधस्स फाससण्णा, कारणे कज्जुवयारादो।

जिस कर्म स्कंध के उदय से जीव के शरीर में जाति प्रतिनियत स्पर्श उत्पन्न होता है, उस कर्म स्कंध की कारण में कार्य के उपचार से 'स्पर्श' यह संज्ञा है। (ध 6/55)

तत्तत्वस्वस्वशरीराणां स्वस्वस्पर्शं करोति।

स्पर्श नाम कर्म उस-उस अपने-अपने शरीरका अपना-अपना स्पर्श उत्पन्न करता है। (क.प्र./30)

यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शनाम।

जिसके उदय से स्पर्श की उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - यदि स्पर्शनामकर्म न हो, तो जीवका शरीर अनियत स्पर्शवाला होगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, कमलके स्वपुष्प, फल और कमल-नाल आदिमें नियत स्पर्श पाया जाता है। (ध. 6/56)

स्पर्श नामकर्म के भेद

जं तं पासणामकम्मं तं अट्ठविहं कक्खडणामं, मउवणामं, गुरुअणामं, लहुअणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं, उसुणणामं चेदि।

जो स्पर्श नामकर्म है वह आठ प्रकार का है - कर्कशनामकर्म मृदुक नामकर्म, गुरूक नामकर्म, लघुकनामकर्म, स्निग्ध नामकर्म, रूक्षनामकर्म, शीतनामकर्म और उष्णनामकर्म । (ध 6/75)

कर्कशनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं कक्खडभावो होदि तं कक्खडं णाम।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के कर्कशता होती है, वह कर्कशनामकर्म है। (ध 6/75)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृदुकनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं मउवभावो होदि तं मउवं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के मृदुता होती है, उसे मुदुक नामकर्म कहते हैं। (ध 6/75आ)

गुरुक नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं गुरुअभावो होदि तं गुरुअंणाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के गुरुता होती है, उसे गुरुक नामकर्म है। (ध 6/75आ)

लघुक नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीर पोग्गलाणं लहुअभावो होदि तं लहुअं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के लघुता होती है, उसे लघुक नामकर्म है। (ध 6/75आ)

स्निग्धनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं णिद्धभावो होदि तं णिद्धं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के स्निग्धता होती है वह स्निग्धनामकर्म है। (ध. 6/75 आ)

रुक्ष नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीरपोग्गलाणं लुक्खभावो होदि तं लुक्खं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के रुक्षता होती है , वह रुक्ष नाम कर्म है। (ध 6/75आ)

शीतनामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीर पोग्गलाणं सीदभावो होदि तं सीदं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के शीतता होती है वह शीत नामकर्म है। (ध 6/75आ)

उष्ण नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण सरीर पोग्गलाणं उसुणभावो होदि तं उसुणं णाम।
जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के उष्णता होती है, वह उष्ण नामकर्म है। (ध 6/75 आ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनुपूर्वी नामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण परिचत्तपुव्वसरीरस्स अगहिदुत्तर सरीरस्स जीवपदेसाणं रचणापरिवाडी होदि तं कम्ममाणुपुव्वीणामं।

जिस जीव ने पूर्व शरीर को छोड़ दिया है, किन्तु उत्तर शरीर को अभी ग्रहण नहीं किया है उसके आत्मप्रदेशों की रचनापरिपाटी जिस कर्म के उदय से होती है वह आनुपूर्वी नामकर्म है। (ध 13/364)

पुव्वुत्तरसरीराणमंतरे एगदो तिण्णि समए वट्टमाणजीवस्स जस्स कम्मस्स उदएण जीव पदेसाणं विसट्ठो संठाण विसेसो होदि, तस्स आणुपुव्वि त्ति सण्णा।

पूर्व और उत्तर शरीरों के अंतरालवर्ती एक, दो और तीन समय में वर्तमान जीव के जिस कर्म के उदय से जीवप्रदेशों का विशिष्ट आकार विशेष होता है, उस कर्म की 'आनुपूर्वी' यह संज्ञा है । (ध 6/56)

स्वस्वगतिगमने विग्रहतो त्यक्तपूर्वशरीराकारं करोति।

इसके कारण अपनी-अपनी गति में जाने के लिये विग्रहगति में पहले छोड़े गये शरीरका आकार होता है। (क.प्र./30)

पूर्वशरीराकाराविनाशो यस्योदयाद् भवति तदानुपूर्व्यनाम।

जिसके उदय से पूर्व शरीर के आकार का विनाश नहीं होता है वह आनुपूर्व्य नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

आनुपूर्वी में उदाहरण

यदा छिन्नायुर्मनुष्यस्तिर्यग्वा पूर्वेण शरीरेण वियुज्यते तदैव नरकभवं प्रत्यभिमुखस्य तस्य यत्पूर्वशरीरसंस्थानाऽनिवृत्तिकारणमपूर्वशरीरप्रदेशप्रापणसामर्थ्योपेतं च विग्रहगतावुदेति तन्नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम।

जब मनुष्य या तिर्यंच जीव अपनी आयु समाप्त होने पर पूर्व शरीर से पृथक होता है उसी समय नरक भव के सम्मुख होने वाले उस जीव के जो पूर्व शरीर का आकार बना रहता है और नये शरीर के प्रदेशों को प्राप्त करने की सामर्थ्य होती है तथा जो विग्रहगति में मात्र उदय में आता है वह नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी नाम है। (त.वृ. भा.8/11)

विशेष -शंका- संस्थाननामकर्म से आकार-विशेष उत्पन्न होता है। इसलिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनुपूर्वी की परिकल्पना निरर्थक है ?

समाधान- नहीं, क्योंकि, शरीर-ग्रहण के प्रथम समय से लेकर ऊपर उदयमें आने वाले उस संस्थाननामकर्म का विग्रहरति के काल में उदयका अभाव पाया जाता है।

यदि आनुपूर्वी नामकर्म न हो, तो विग्रहगति के कालमें जीव अनियत संस्थानवाला हो जायेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, जाति-प्रतिनियत संस्थान विग्रह कालमें पाया जाता है। (ध. 6/56)

आनुपूर्वी के भेद

जं तं आणुपुव्वीणाम कम्मं तं चउव्विहं, णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं तिरिक्खगदिपाओग्गापुव्वीणामं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं देवगदिपाओग्गाणुपुव्वीणामं चेदि।

जो आनुपूर्वी नामकर्म है वह चार प्रकार का है - नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, मनुष्यगति प्रयोग्यानुपूर्वी नामकर्म और देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म। (ध 6/76)

नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी

जस्स कम्मस्स उदएण णिरयगइं गयस्स जीवस्स विग्गहगईए वट्टमाणयस्स णिरयगइपाओग्गसंठाणं होदि तं णिरयगइ पाओग्गाणुपुव्वीणामं।

जिस कर्म के उदय से नरकगति को गये हुए और विग्रह गति में वर्तमान जीव के नरकगति के योग्य संस्थान होता है, वह नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है। (ध 6/76)

तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण तिरिक्खगइं गयस्स जीवस्स विग्गहगईए वट्टमाणयस्स तिरिक्खगईपाओग्गसंठाणं होदि तं तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीणामं।

जिस कर्म के उदय से तिर्यग्गति को गये हुए और विग्रह गति में वर्तमान जीव के नरकगति के योग्य संस्थान होता है, वह तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है। (ध 6/76 आ)

मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण मणुसगइं गयस्स जीवस्स विग्गहगईए वट्टमाण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्स मणुसगइपाओग्गसंठाणं होदि तं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीणामं।
जिस कर्म के उदय से मनुष्य गति को गये हुए और विग्रह गति में वर्तमान जीव के मनुष्यगति के योग्य संस्थान होता है, वह मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है। (ध 6/76 आ)

देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण देवगइं गयस्स जीवस्स विग्गहगईए वट्टमाण देवगइपाओग्ग संठाणं होदि तं देवगइपाओगाणुपुव्वीणामं।
जिस कर्म के उदय से देवगति को गये हुए और विग्रहगति में वर्तमान जीव के देवगति के योग्य संस्थान होता है, वह देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है। (ध 6/76आ)

अगुरुलघु नाम कर्म

जस्स कम्मस्सुदएण जीवस्स सगसरीरं गुरुलहुगभाव विवज्जियं होदि तं कम्मगुरुअलहुगं णाम।
जिस कर्म के उदय से जीव का अपना शरीर गुरु और लघु भाव से रहित होता है वह अगुरुलघु नामकर्म है। (ध 13/364)

अगुरुलघुनाम स्वस्वरीरं गुरुत्वलघुत्ववर्जितं करोति।
अगुरुलघु नाम कर्म अपने -अपने शरीर को गुरुत्व और लघुत्व से रहित करता है। (क.प्र./30)

यस्योदयादयः पिण्डवद् गुरुत्वान्नाधः पतति न चार्कतूलवल्लघुत्वादूर्ध्वं गच्छति तदगुरुलघुनाम।
जिसके उदय से लोहे के पिण्ड के समान गुरु होने से न तो नीचे गिरता है और न अर्कतूल के समान लघु होने से ऊपर जाता है वह अगुरुलघु नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - यदि जीवके अगुरुलघुकर्म न हो, तो या तो जीव लोहे के गोलेके समान भारी हो जायेगा, अथवा आकके तूल (रुई) के समान हलका हो जायेगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता है। (ध. 6/58)

उपघात नामकर्म

जं कम्मं जीवपीडाहेउअवयवे कुणदि, जीवपीडाहेदुदव्वाणि वा विसासि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पासादीणि जीवस्स ढोएदि तं उवघादं णाम।

जो कर्म अवयवों को जीव की पीडा का कारण बना देता है, अथवा जीव पीड़ा के कारण स्वरूप विष, खड्ग, पाश आदि द्रव्यों को जीव के लिये ढोता है, अर्थात् लाकर संयुक्त करता है, वह उपघात नामकर्म कहलाता है।

(ध 6/59)

जस्स कम्मस्सुदएण सरीरमप्पणो चेव पीडं करेदि तं कम्ममुवघादं णामं।

जिस कर्म के उदय से शरीर अपने को ही पीड़ाकारी होता है, वह उपघात नामकर्म है। (ध 13/364)

उपघातनाम स्वबाधाकारकं तुन्दादिशरीरावयवं करोति।

उपघात नाम कर्म अपने को बाधाकारक तोंद आदि शरीरावयवों को करता है। (क.प्र./30)

यस्योदयात्स्वयंकृतोद्बन्धनमरुप्रपतनादिनिमित्त उपघातो भवति तदुपघातनाम।

जिसके उदय से स्वयंकृत उद्बन्धन और मरुस्थल में गिरना आदि निमित्तक उपघात होता है वह उपघात नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

यस्योदयात्स्वयं कृतोद्बन्धनमरुत्पतनादि-निमित्त उपघातो भवति तदुपघातनाम।

जिस कर्म के उदय से अपने द्वारा किये गये बन्धन, वायु, पर्वत से गिरना इत्यादि निमित्त से स्वयं का घात होता है वह उपघात नाम कर्म है।

(त.वृ.भा.8/11)

स्वकृतो बन्धनाद्यैः स्यादुपघातो यतस्तु तत्। उपघातं समुद्दिष्टं॥

जिसके उदय से अपने ही बन्धन आदि से अपना ही घात होता है वह उपघात नामकर्म कहा गया है। (ह.पु. 58/263)

यदुदयेन स्वयमेव गले पाशं बद्ध्वा वृक्षादौ अवलम्ब्य उद्वेगान्मरणं करोति प्राणापाननिरोधं कृत्वा म्रियते इत्येवमादिभिरनेकप्रकारैः शस्त्रघातभृगुपाताग्निझम्पापातजलनिमज्जनविषभक्षणादिभिरात्मघातं करोति तदुपघातनाम।

जिसके उदय से जीव स्वयं ही गले में पाश बांधकर, वृक्ष आदि पर टंग कर मर जाता है वह उपघात नामकर्म है। शस्त्रघात, भृगुपात, विषभक्षण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अग्निपात, जल निमज्जन आदि के द्वारा आत्मघात करना भी उपघात है।
(त.वृ. श्रु. 8/11)

बहुरि 'उपेत्य घातः उपघातः'' अपने घात का नाम है, सो जाके उदय तैं अपने अंगनि तै अपना घात होइ बड़े सींग वा लम्बे स्तन वा मोटा उदर ऐसे अङ्ग होंई सो उपघात नाम है। (गो.का. स.च/33)

विशेष - शंका- जीव को पीड़ा करने वाले अवयव कौन-कौन हैं ?

समाधान - महाशृंग (बारह सिंगा के समान बड़े सींग), लम्बे स्तन, विशाल तोंदवाला पेट आदि जीव को पीड़ा करने वाले अवयव हैं।

यदि उपघात नामकर्म जीवके न हो, तो बात, पित्त और कफसे दूषित शरीरसे जीवके पीड़ा नहीं होना चाहिए। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता है।

शंका - जीव के दुःख उत्पन्न करने में तो असाता-वेदनीयकर्मका व्यापार होता है, (फिर यहाँ उपघातकर्मको जीव-पीड़ाका कारण कैसे बताया जा रहा है) ?

समाधान -जीवके दुःख उत्पन्न करनेमें असातावेदनीयकर्मका व्यापार रहा आवे, किन्तु उपघातकर्म भी उस असातावेदनीयका सहकारी कारण होता है, क्योंकि, उसके उदयके निमित्तसे दुःखकर पुद्गल द्रव्यका सम्पादन (समागम) होता है। (ध. 6/59)

परघात नामकर्म

परेषां घातः परघातः। जस्स कम्मस्स उदएण परघादहेदू सरीरे पोग्गला णिप्फज्जंति तं कम्मं परघादं णाम। तं जहा - सप्पदाढासु विसं, विच्छिय-पुंछे परदुःखहेउपोग्गलोवचओ, सीह वग्घच्छवलादिसु णहदंता सिंगिव-च्छणाहीधत्तूरादओ च परघादुप्पाययां।

पर जीवों के घात को परघात कहते हैं। जिस कर्म के उदय से शरीर में पर को घात करने के लिये कारणभूत पुद्गल निष्पन्न होते हैं, वह परघात नामकर्म कहलाता है। जैसे साँप की दाढ़ों में विष, विच्छू की पूंछ में पर दुख के कारणभूत पुद्गलों का संचय, सिंह व्याघ्र और छल्ल (शबल चीता) आदि में (तीक्ष्ण) नख और दंत, तथा सिंगी, वत्स्यनाभि और धत्तूरा आदि विषैले वृक्ष पर को दुःख उत्पन्न करने वाले हैं। (ध 6/59)

परघातनाम परबाधाकारकं सर्पदंष्ट्राशृङ्गादिशरीरावयवं करोति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परघात नाम कर्म दूसरों को बाधा देनेवाले सर्प दाढ़, सींग आदि शरीरावयव करता है। (क.प्र./31)

यन्निमित्तः परशस्त्रादेर्व्याघातस्तत्परघातनाम।

जिसके उदय से परशस्त्रादिक का निमित्त पाकर व्याघात होता है वह परघात नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

यस्योदयात्फलकादिसन्निधानेऽपि परप्रयुक्तशस्त्राद्याघातो भवति तत्परघातनाम

जिसके उदय से ढाल आदि के रहते हुए भी परके द्वारा किये गये शस्त्रों के आघात हो जाते हैं वह परघात नामकर्म हैं। (त.वृ.भा.8/11)

यदुदयेन परशस्त्रादिना घातो भवति तत्परघातनाम।

जिसके उदय से दूसरों के शस्त्र आदि से जीव का घात होता है वह परघात नामकर्म है। (त.वृ. श्रु. 8/11)

बहुरि जाके उदय तैं औरनि का घात करै ऐसे तीखे सींग वा नख वा सांप आदिक कै डाढ़ इत्यादिक अवयव होंहि, सो परघात नाम है।

(गो.का. स.च/33)

उच्छवास नामकर्म

उच्छ्वसनमुच्छ्वासः। जस्स कम्मस्स उदएण जीवो उस्सासणिस्सासकज्जुप्पायणक्खमो होदि तस्स कम्मस्स उस्सासो त्ति सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो।

सांस लेने को उच्छ्वास कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव उच्छ्वास और निःश्वास रूप कार्य के उत्पादन में समर्थ होता है, उस कर्म की 'उच्छ्वास' यह संज्ञा कारण में कार्य के उपचार से है। (ध 6/60)

उच्छ्वासनाम उच्छ्वासनिःश्वासं करोति।

उच्छ्वास नामकर्म उच्छ्वास और निःश्वासको करता है। (क.प्र./31)

यद्धेतुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम।

जिसके निमित्त से उच्छ्वास होता है वह उच्छ्वासनामकर्म है।

(स.सि. 8/11)

विशेष - यदि उच्छ्वास नामकर्म न हो, तो जीव श्वास रहित हो जाय। किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा है नहीं, क्योंकि संसारमें उच्छ्वास रहित जीव पाये नहीं जाते।
(ध. 6/60)

आतप नामकर्म

आतपनमातपः। जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे आदओ हो ज्ज, तस्स कम्मस्स आदओ त्ति सण्णा। सोष्णः प्रकाशः आतपः।

खूब तपने को आतप कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में आतप होता है, उस कर्म की 'आतप' यह संज्ञा है। उष्णता - सहित प्रकाश को आतप कहते हैं। (ध 6/60)

जस्स कम्मस्सुदएण सरीरे आदाओ होदि तं आदावणामं। सोष्णप्रभा आतापः।

जिस कर्म के उदय से शरीर में आताप होता है वह आताप नामकर्म है। उष्णता सहित प्रभा का नाम आताप है। (ध 13/365)

आतपनामोष्णप्रभां करोति तत् सूर्यबिम्बे बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिके भवति।

आतप नामकर्म उष्ण प्रभा करता है। वह सूर्य बिम्ब में स्थित बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों को होता है। (क.प्र./31)

यदुदयान्निवृत्तमातपनं तदातपनाम।

जिसके उदय से शरीर में आतप की रचना होती है वह आतपनामकर्म है।
(स.सि. 8/11)

विशेष - यदि आतपनामकर्म न हो, तो पृथिवीकायिक जीवोंके शरीररूप सूर्य-मंडलमें आतपका अभाव हो जाय। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता। (ध. 6/60)

उद्योत नामकर्म

उद्योतनमुद्योतः जस्स कम्मस्स उदएण जीवसरीरे उज्जोओ उप्पज्जदि तं कम्मं उज्जोवं णाम।

उद्योतन अर्थात् चमकने को उद्योत कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में उद्योत उत्पन्न होता है वह उद्योत नामकर्म है। (ध 6/60)

उद्योतनाम शीतलप्रभां करोति, तत् चन्द्रतारकादिबिम्बेषु तेजो-वायुसाधारणवर्जितचन्द्रतारकादि बिम्बजनितबादरपर्याप्त तिर्यग्जीवेषु भवति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्योत नाम कर्म शीतल प्रभा करता है। वह चन्द्र, तारागण आदि के बिम्ब में तथा तेजकायिक वायुकायिक साधारणकायिक जीवों के सिवाय चन्द्रतारक आदि बिम्ब में होने वाले बादरपर्याप्त तिर्यंच जीवों में होता है। (क.प्र./31)

उद्योतश्चन्द्रमणिखद्योतादिप्रभवः प्रकाशः। यन्निमित्तमुद्द्योतनं तदुद्योतनाम। चन्द्रमणि और जुगुनू आदि के निमित्त से जो प्रकाश पैदा होता है उसे उद्योत कहते हैं। जिसके निमित्त से शरीर में उद्योत होता है वह उद्योत नामकर्म है। (स.सि. 5/24, 8/11)

विशेष - यदि उद्योत नामकर्म न हो, तो चन्द्र, नक्षत्र तारा और खद्योत (जुगुनू नामक कीड़ा) आदिमें शरीरों के उद्योत (प्रकाश) न होवेगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता। (ध. 6/60)

विहायोगति नामकर्म

विहाय आकाशमित्यर्थः। विहायसि गतिः विहायोगति। जेसिं कम्मक्खंधाणमुदएण जीवस्स आगासे गमणं होदि तेसिं विहायगदि त्ति सण्णा।

विहायस् नाम आकाश का है। आकाश में गमन को विहायोगति कहते हैं। जिन कर्मस्कन्धों के उदय से जीव का आकाश में गमन होता है, उनकी 'विहायोगति' यह संज्ञा है। (ध 6/61)

जस्स कम्मस्सुदएण भूमिमोट्ठहिय अणोट्ठहिय वा जीवाणमागासे गमणं होदि तं विहायगदिणामं।

जिस कर्म के उदय से भूमि का आश्रय लेकर या बिना उसका आश्रय लिये भी जीवों का आकाश में गमन होता है, वह विहायोगति नामकर्म है। (ध 13/365)

विहाय आकाशम्। तत्र गतिनिर्वर्तकं तद्विहायोगतिनाम।

विहायस्का अर्थ आकाश है। उसमें गतिका निर्वर्तक कर्म विहायोगति नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - **शंका**- तिर्यंच और मनुष्यों का भूमिपर गमन किस कर्म के उदय से होता है ?

समाधान - विहायोगति नामकर्म के उदय से, क्योंकि, विहस्तिमात्र (बारह अंगुलप्रमाण) पांववाले जीव प्रदेशों के द्वारा भूमिको व्याप्त करके जीवके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त प्रदेशों का आकाश में गमन पाया जाता है। (ध. 6/61)

विहायोगति के भेद

जं तं विहायगइणामकम्मं तं दुविहं, पसत्थविहायगदी अप्पसत्थ विहायगदी चेदि।

जो विहायोगति नामकर्म है, वह दो प्रकार का है - प्रशस्तविहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति। (ध 6/76)

प्रशस्त विहायोगति

जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं सीह-कुंजर-वसहाणं व पसत्था गई होज्ज, तं पसत्थ विहायगदी णाम।

जिस कर्म के उदय से जीवों के सिंह, कुंजर, और वृषभ (बैल) के समान प्रशस्त गति होवे, वह प्रशस्त विहायोगति नामकर्म है। (ध 6/77)

तत्र प्रशस्तविहायोगतिनाम मनोज्ञं गमनं करोति।

प्रशस्त विहायोगति नाम कर्म मनोज्ञ गमन करता है। (क.प्र./32)

वरवृषभद्विरदादिप्रशस्तगतिकारणं प्रशस्तविहायोगतिनाम।

श्रेष्ठ हाथी, बैल आदि की प्रशस्त गति में कारण प्रशस्त विहायोगति नामकर्म होता है। (रा.वा. 8/11)

गजवृषभहंसमयूरादिवत् प्रशस्तविहायोगतिनाम।

गज, वृषभ, हंस, मयूर आदि के गमन की तरह सुन्दर गति को प्रशस्तविहायोगति कहते हैं। (त.वृ. श्रु. 8/11)

अप्रशस्त विहायोगति

जस्स कम्मस्स उदएण खरोट्ट - सियालणं व अप्पसत्था गई होज्ज, सा अप्पसत्थविहायगदी णाम।

जिस कर्म के उदय से गर्दभ, ऊँट और सियालों के समान अप्रशस्त गति होवे, यह अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म है। (ध 6/77)

अप्रशस्तविहायोगतिरप्रशस्तगमनं करोति।

अप्रशस्त विहायोगति अप्रशस्त-अमनोज्ञ गमन करता है। (क.प्र./31)

उष्ट्रखराद्यप्रशस्तगतिनिमित्तमप्रशस्तविहायोगतिनाम चेति।

ऊँट, गधा आदि की अप्रशस्त गति में कारण अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। (रा.वा. 8/11)

खरोष्ट्रमार्जारकुर्कुरसर्पादिवत् अप्रशस्तविहायोगतिनाम।

ऊँट, गधा, बिल्ली, कुत्ता, सर्प आदि के समान कुटिल गति को अप्रशस्त विहायोगति कहते हैं। (त.वृ. श्रु. 8/11)

त्रस नामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण जीवाणं संचरणासंचरणभावो होदि तं कम्मं तसणामं।

जिस कर्म के उदय से जीवों के गमनागमन भाव होता है वह त्रस नामकर्म है। (ध 13/365)

जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं तसत्तं होदि, तस्स कम्मस्स तसेत्ति सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो।

जिस कर्म के उदय से जीवों के त्रसपना होता है, उस कर्म की 'त्रस' यह संज्ञा कारण में कार्य के उपचार से है। (ध 6/61)

त्रसनाम द्वीन्द्रियादीनां चलनोद्वेजादियुक्तं त्रसकायं करोति।

त्रस नाम कर्म चलन, उद्वेजन आदि युक्त द्वीन्द्रिय आदि रूप त्रसकाय को करता है। (क.प्र./32)

यदुदयाद् द्वीन्द्रियादिषु जन्म तत्त्रसनाम।

जिसके उदय से द्वीन्द्रियादिक में जन्म होता है वह त्रस नामकर्म है। (स.सि.8/11)

त्रसनामकर्मणो जीवविपाकिन उदयापादित वृत्तिविशेषाः त्रसा इति व्यपदिश्यन्ते।

जीव विपाकी त्रस नामकर्म के उदय से उत्पन्न वृत्ति विशेषवाले जीव त्रस कहे जाते हैं। (रा.वा. 2/12)

विशेष - यदि त्रसनामकर्म न हो, तो द्वीन्द्रिय आदि जीवों का अभाव हो जायेगा। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, द्वीन्द्रिय आदि जीवों का सद्भाव पाया जाता है। (ध. 6/61)

स्थावर नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो थावरत्तं पडिवज्जदि तस्स कम्मस्स थावरसण्णा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस कर्म के उदय से जीव स्थावरपने को प्राप्त होता है, उस कर्म की 'स्थावर' यह संज्ञा है । (ध 6/61)

जाणदि पस्सदि भुंजदि सेवदि पासिंदिएण एक्केण।
कुणदि य तस्सामित्तं थावरू एइंदिओ तेण ॥

स्थावर जीव एक स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा ही जानता है, देखता है, खाता है, सेवन करता है और उसका स्वामीपना करता है, इसलिए उसे एकेन्द्रिय स्थावर जीव कहा है। (ध. 1/239)

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावरनाम पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां चलनोद्वेजनादिरहितस्थावरकायं करोति।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति, स्थावर नाम कर्म पृथ्वी आदि एकेन्द्रियों के चलन, उद्वेजन आदि रहित स्थावरकायको करता है। (क.प्र./32)

यन्निमित्त एकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावस्तत्स्थावरनाम।

जिसके निमित्त से एकेन्द्रियों में उत्पत्ति होती है वह स्थावर नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - यदि स्थावरनामकर्म न हो, तो स्थावर जीवों का अभाव हो जायगा। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, स्थावर जीवों का सद्भाव पाया जाता है। (ध. 6/61)

बादर नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो बादरेसु उप्पज्जदि तस्स कम्मस्स बादरमिदि सण्णा।

जिस कर्म के उदय से जीव बादरकाय वालों में उत्पन्न होता है, उस कर्म की 'बादर' यह संज्ञा है। (ध 6/61)

बादरः स्थूलः सप्रतिघातः कायो येषां ते बादरकायाः।

जिन जीवों का शरीर बादर, स्थूल अर्थात् प्रतिघात सहित होता है उन्हें बादरकाय कहते हैं। (ध 1/276)

बादरनाम परैर्बाध्यमानं स्थूलशरीरं करोति।

बादर नाम कर्म दूसरों के द्वारा बाधा दिये जाने योग्य स्थूल शरीर को करता है। (क.प्र./33)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यबाधाकरशरीरकारणं बादरनाम।

अन्य बाधाकर शरीर का निर्वर्तक कर्म बादर नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

घादसरीरं थूलं।

जो दूसरों को रोके, तथा दूसरों से स्वयं रुके सो स्थूल कहलाता है।

(गो.जी. /183)

तद्ग्रहणयोग्यैर्बादरैः।

जो इन्द्रियों के ग्रहण के योग्य होते हैं वे बादर हैं। (प्र.सा./230)

विशेष - यदि बादरनामकर्म न हो, तो बादर जीवोंका अभाव हो जायगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिघाती शरीरवाले जीवोंकी भी उपलब्धि होती है। (ध. 6/61)

सूक्ष्म

जस्स कम्मस्सुदएण जीवा सुहुमेइंदिया होंति तं सुहुमणामं।

जिस कर्म के उदय से जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय होते हैं वह सूक्ष्म नामकर्म है।

(ध 13/365)

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो सुहुमत्तं पडिवज्जदि तस्स कम्मस्स सुहुममिदि सण्णा।

जिस कर्म के उदय से जीव सूक्ष्मता को प्राप्त होता है, उस कर्म की 'सूक्ष्म' यह संज्ञा है। (ध 6/62)

अण्णेहि पोग्गलेहिं अपडिहम्ममाणसरीरो जीवो सुहुमो।

जिनका शरीर अन्य पुद्गलों से प्रतिघात रहित है वे सूक्ष्म जीव हैं।

(ध. 3/331)

सूक्ष्मनाम परैरबाध्यमानं सूक्ष्मशरीरं करोति।

सूक्ष्म नामकर्म दूसरों के द्वारा बाधा न दिये जाने योग्य सूक्ष्म शरीर को करता है। (क.प्र./32)

सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम।

सूक्ष्म शरीर का निर्वर्तक कर्म सूक्ष्म नामकर्म हैं। (स.सि.8/11)

यदुदयादन्यजीवानुपग्रहोपघाताऽयोग्यसूक्ष्मशरीरनिर्वृत्तिर्भवति तत्सूक्ष्मनाम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसके उदय से अन्य जीवों के अनुग्रह या उपघात के अयोग्य सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति हो वह सूक्ष्म नामकर्म है। (रा.वा. 8/11)

आधारानपेक्षितशरीराः जीवाः सूक्ष्मा भवन्ति। जलस्थलरूपाधारेण तेषां शरीरगतिप्रतिघातो नास्ति। अत्यन्तसूक्ष्मपरिणामत्वात्ते जीवाः सूक्ष्मा भवन्ति।

आधारकी अपेक्षा रहित जिनका शरीर है वे सूक्ष्म जीव हैं। जिनकी गतिका जल, स्थल आधारों के द्वारा प्रतिघात नहीं होता है। और अत्यन्त सूक्ष्म परिणमन के कारण वे जीव सूक्ष्म कहे हैं। (गो.जी. /184)

ण य जेसिं पडिखलणं पुढ़वी तोएहिं अग्गिवाएहिं।
ते जाण सुहुम-काया इयरा पुण थूलकाया य ॥

जिन जीवों का पृथ्वी से, जलसे, आग से और वायु से प्रतिघात नहीं होता, उन्हें सूक्ष्मकायिक जीव जानो। (का.अ./127)

विशेष- यदि सूक्ष्मनामकर्म न हो, तो सूक्ष्म जीवों का अभाव हो जाय। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, अपने प्रतिपक्षी के अभाव में बादरकायिक जीवों के भी अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। (ध. 6/62)

पर्याप्त नामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण जीवा पज्जत्ता होंति तं कम्मं पज्जत्तं णामं

जिस कर्म के उदय से जीव पर्याप्त होते हैं, वह पर्याप्त नामकर्म है।

(ध 13/365)

पर्याप्तनाम स्वस्वपर्याप्तीनां पूर्णतां करोति।

पर्याप्तनामकर्म स्व-स्व पर्याप्तियों की पूर्णता को करता है। (क.प्र./33)

यदुदयादाहारादिपर्याप्तिनिर्वृत्तिः तत्पर्याप्तिनाम।

जिनके उदय से आहार आदि पर्याप्तियों की रचना होती है वह पर्याप्ति नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - यदि पर्याप्तनामकर्म न हो, तो सभी जीव अपर्याप्त ही हो जावेंगे। किन्तु वैसा है नहीं, क्योंकि, पर्याप्त जीवका भी सद्भाव पाया जाता है।

(ध. 6/62)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्त नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो पज्जत्तीओ समाणेदुं ण सक्कदि तस्स कम्मस्स अपज्जत्तणाम सण्णा।

जिस कर्म के उदय से जीव पर्याप्ति यों को समाप्त करने के लिये समर्थ नहीं होता है, उस कर्म की 'अपर्याप्त नाम' यह संज्ञा है। (ध 6/62)

अपर्याप्तनाम स्वस्वपर्याप्तीनामपूर्णतां करोति।

अपर्याप्त नामकर्म अपनी-अपनी पर्याप्तियों की अपूर्णता करता है।

(क.प्र./33)

षड्विधपर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्तिनाम।

जो छह प्रकार की पर्याप्तियों के अभाव का हेतु है वह अपर्याप्त नाम कर्म है।

(स.सि.8/11)

विशेष - यदि अपर्याप्त नामकर्म न हो, तो सभी पर्याप्तक ही होवेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिपक्षी के अभाव में विवक्षितके भी अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। (ध. 6/62)

प्रत्येक शरीर

जस्स कम्मस्सुदएण एक्कसरीरे एक्को चेव जीवो जीवदि तं कम्मं पत्तेयसरीर णामं।

जिस कर्म के उदय से एक शरीर में एक ही जीव जीवित रहता है, वह प्रत्येक शरीर नामकर्म है। (ध 13/365)

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो पत्तेयसरीरो होदि, तस्स कम्मस्स पत्तेयसरीरमिदि सण्णा।

जिस कर्म के उदय से जीव प्रत्येक शरीरी होता है, उस कर्म की 'प्रत्येक शरीर' यह संज्ञा है। (ध 6/62)

प्रत्येकशरीरनामैकस्य जीवस्येकशरीरस्वामित्वं करोति।

प्रत्येक शरीर नामकर्म एक जीवको एक शरीर का स्वामी करता है।

(क.प्र./36)

शरीरनामकर्मोदयान्निर्वर्त्यमानं शरीरमेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरनामकर्म के उदय से रचा जाने वाला जो शरीर जिसके निमित्त से एक आत्मा के उपभोग का कारण होता है वह प्रत्येक शरीर नामकर्म है (स.सि. 8/11)

विशेष - यदि प्रत्येकशरीरनामकर्म न हो, तो एक शरीरमें एक जीवका ही उपलम्भ नहीं होगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रत्येकशरीरी जीवोंका सद्भाव बाधा-रहित पाया जाता है। (ध. 6/62)

साधारण शरीर नामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण एगसरीरा होदूण अणंता जीवा अच्छंति तं कम्मं साहारणसरीरं।

जिस कर्म के उदय से एक ही शरीर वाले होकर अनन्त जीव रहते हैं, वह साधारण शरीर नामकर्म है। (ध 13/365)

जस्स कम्मस्स उदएण जीवो साधारणसरीरो होज्ज, तस्स कम्मस्य साधारण सरीरमिदि सण्णा।

जिस कर्म के उदय से जीव साधारण शरीरी होता है, उस कर्म की 'साधारण शरीर' यह संज्ञा हैं। (ध 6/63)

साधारणशरीरनामानन्तजीवानामेकशरीरस्वामित्वं करोति।

साधारण शरीर नामकर्म अनन्त जीवों को एक शरीर का स्वामी करता है। (क.प्र./36)

बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं शरीरं यतो भवति तत्साधारण शरीरनाम।

बहुत आत्माओं के उपभोग का हेतुरूप से साधारण शरीर जिसके निमित्त से होता है वह साधारण शरीर नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

विशेष - यदि साधारणनामकर्म न हो, तो सभी जीव प्रत्येकशरीरी ही हो जावेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिपक्षी के अभाव में विवक्षित जीव के भी अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। (ध. 6/63)

स्थिर नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण रस - रुहिर-मेद-मज्जट्ठि-मांस-सुक्काणं त्थिर-त्तमविणासो अगलणं होज्ज तं थिर णामं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस कर्म के उदय से रस, रुधिर, मेदा, मज्जा, अस्थि, मांस और शुक्र इन सात धातुओं की स्थिरता अर्थात् अविनाश व अलगन हो (गलना न हो) वह स्थिर नामकर्म है। (ध. 6/63)

जस्स कम्मस्सुदएण रसादीणं सगसरुवेण केत्तियंपि कालमवट्ठाणं होदि तं थिरणामं।

जिस कर्म के उदय से रसादिक धातुओं का अपने रूप से कितने ही काल तक अवस्थान होता है वह स्थिर नामकर्म है। (ध 13/365)

स्थिरभावस्य निर्वर्तकं स्थिरनाम।

स्थिरभाव का निर्वर्तक कर्म स्थिर नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

यदुदयात् दुष्करोपवासादितपस्करणेऽपिअङ्गोपाङ्गानां स्थिरत्वं जायते तत् स्थिरनाम।

जिसके उदय से दुष्कर उपवास आदि तप करने पर भी अंग उपांग आदि स्थिर बने रहते हैं, कृश नहीं होते वह स्थिर नामकर्म है। (रा.वा. 8/11)

यस्योदयाद्दुष्करोपवासादितपश्चरणेप्यङ्गोपाङ्गानां स्थिरत्वं जायते तत् स्थिरनाम।

जिसके उदय से दुष्कर उपवास आदि तपश्चरण करने पर भी अंगोपांग स्थिर रहते है वह स्थिर नाम कर्म है। (त.वृ.भा.8/11)

बहुरि जाके उदय तैं रसादिक धातु अर उपधातु अपने-अपने ठिकाने स्थिर रहैं, सो स्थिर नाम है ..... सो इनका शरीर विषै जहाँ ठिकाना है। तहाँ ही स्थिर रहैं सो स्थिर प्रकृति के उदय तै रहे हैं। (गो.का. स.च/33)

विशेष - यदि स्थिरनामकर्म न हो, तो इन धातुओंका स्थिरताके अभावसे गलना ही होगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, हानि और वृद्धिके बिना इन धातुओंका अवस्थान देखा जाता है। (ध. 6/63)

अस्थिर नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण रस रुहिर-मांस-मेद-मज्जट्ठि-सुक्काणं परिणामो होदि तमथिरणाम।

जिस कर्म के उदय से रस, रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्र, इन धातुओं का परिणमन होता है, वह अस्थिर नामकर्म है। (ध 6/63)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस्स कम्मस्सुदएण रसादीणमवुरिम धातुसरूवेण परिणामो होदि तमथिरणामं।

जिस कर्म के उदय से रसादिकों का आगे की धातुओं स्वरूप से परिणमन होता है, वह अस्थिर नामकर्म है। (ध 13/365)

यदुदयादीषदुपवासादिकरणात् स्वल्पशीतोष्णादिसं-बन्धाच्च अङ्गोपाङ्गानि कृशी भवन्ति तदस्थिरनाम।

जिस कर्म के उदय से एक उपवास से या साधारण शीत उष्ण आदि से ही शरीर में अस्थिरता आ जाय, कृश हो जाय वह अस्थिर नामकर्म है। (रा.वा. 8/11)

यस्योदयादीषदुपवासादिकरणे स्वल्पशीततोष्णादिसम्बन्धा-द्वाऽङ्गोपांगानि कृशीभवन्ति तदस्थिरनाम।

जिसके उदय से अल्प उपवास आदि करने पर अथवा अल्प शीत या उष्ण के सम्बन्ध से अंगोपांगकृश हो जाते हैं वह अस्थिर नामकर्म है।

(त.वृ.भा.8/11)

विशेष - रससे रक्त बनता है, रक्त से मांस उत्पन्न होता है, मांस से मेदा पैदा होती है, मेदासे हड्डी बनती है, हड्डी से मज्जा पैदा होता है, मज्जा से शुक्र उत्पन्न होता है और शुक्र से प्रजा (सन्तान) उत्पन्न होती है।

पन्द्रह नयन-निमेषों की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाकी एक कला होती है। वीस कला का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्त और कला के दशवें भाग कलाप्रमाण एक अहोरात्र (दिन-रात) होता है। पन्द्रह अहोरात्रों का एक पक्ष होता है। पच्चीस सौ चौरासी कलाप्रमाण, तथा तीन बटे सात भागों से परिहीन नौ काष्ठा प्रमाण (2584 क. $8\frac{4}{7}$ का.) काल तक रस स्वरूप से रहकर रुधिररूप परिणत होता है। वह रुधिर भी उतने ही काल तक रुधिररूप से रहकर मांसस्वरूप से परिणत होता है। इसी प्रकार शेष धातुओं का भी परिणमन-काल कहना चाहिए। इस तरह एक मासके द्वारा रस शुक्ररूप से परिणत होता है।

इस अस्थिरनामकर्मके अभावमें धातुओंके क्रमशः परिवर्तनका नियम न रहेगा। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा माननेपर अनवस्था प्राप्त होती है। (ध. 6/63-64)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभ नामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण चक्कवट्टि बलदेव वासुदेवत्तादिरिद्धीणं सूचया संखकुसारविंदादओ अंग पच्चंगेसु उप्पज्जंति तं सुहणामं।

जिस कर्म के उदय से चक्रवर्तित्व, बलदेवत्व और वासुदेवत्व आदि ऋद्धियों के सूचक शंख, अंकुश और कमल आदि चिन्ह अंग प्रत्यंगों में उत्पन्न होते हैं, वह शुभ नाम कर्म है। (ध 13/365)

जस्स कम्मस्स उदएण अंगोवंगणामकम्मोदयजणिद अंगाणमुवंगाणं च सुहत्तं होदि तं सुहं णाम।

जिस कर्म के उदय से आंगोपांगनाम कर्मोदय जनित अंगों और उपांगों के शुभपना (रमणीयत्व) होता है, वह शुभनाम कर्म है। (ध. 6/64)

शुभनाम मस्तकादिप्रशस्तावयवं करोति।

शुभ नामकर्म मस्तक आदि प्रशस्त अवयव करता है। (क.प्र./36-37)

यदुदयाद्रमणीयत्वं तच्छुभनाम।

जिसके उदय से रमणीय होता है वह शुभ नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

अशुभनामकर्म

अंगोवंगाणमसुहत्तणिव्वत्तयमसुहं णाम।

अंग और उपांगों के अशुभता का उत्पन्न करने वाला अशुभनामकर्म है। (ध 6/64)

जस्स कम्मस्सुदएण असुहलक्खणाणि उप्पज्जंति तमसुहणामं।

जिस कर्म के उदय से अशुभ लक्षण उत्पन्न होते हैं वह अशुभ नामकर्म है। (ध 13/365)

अशुभनामापानाद्यप्रशस्तावयवं करोति।

अशुभ नामकर्म अपान आदि अप्रशस्त अवयवों को करता है। (क.प्र./37)

अतिवैरूप्यहेतुश्च नामाशुभमशोभनम्।

जो अत्यन्त विरूपता का कारण है वह दुःखदायी अशुभ नाम कर्म है। (ह.पु. 58/272)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभगनामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण जीवस्स सोहग्गं होदि तं सुहगणामं।

जिस कर्म के उदय से जीव के सौभाग्य होता है, वह सुभग नामकर्म है।

(ध 13/365)

त्थी-पुरिसाणं सोहग्गणिव्वत्तयं सुभगं णाम।

स्त्री और पुरुषों के सौभाग्य को उत्पन्न करने वाला सुभग नामकर्म है।

(ध 6/65)

सुभगनाम परेषां रुचिरत्वं करोति।

सुभग नाम कर्म दूसरों की रुचिरता करता है। (क.प्र./37)

यदुदयाद्रूपवानरूपो वा परेषां प्रीतिं जनयति तत्सुभगनाम।

जिसके उदय से जीव रूपवान होवे चाहे कुरूप होवे किन्तु परको प्रीति पैदा कराता है वह सुभग नामकर्म है। (त.वृ.भा.8/11)

यदुदयेन जीवः परप्रीतिजनको भवति दृष्टः श्रुतो वा तत्सुभगनाम।

जिसके उदय से किसी जीव को देखने या सुनने पर उसके विषय में प्रीति होती है वह सुभगनाम कर्म है। (त.वृ. श्रु. 8/11)

दुर्भगनाम कर्म

त्थी-पुरिसाणं दूहवभावणिव्वत्तयं दूहवं णाम।

स्त्री पुरुषों के ही दुर्भग भाव अर्थात् दौर्भाग्य को उत्पन्न करने वाला दुर्भग नामकर्म है। (ध.6/65)

जस्स कम्मस्सुदएण जीवो दूहवो होदि तं दूभगं णामं।

जिस कर्म के उदय से जीव के दौर्भाग्य होता है वह दुर्भग नामकर्म है।

(ध 13/366)

दुर्भगनामारुचिरत्वं करोति

दुर्भग नाम कर्म दूसरों की अरुचि करता है। (क.प्र./37)

यदुदयाद्रूपादिगुणोपेतोऽप्यप्रीतिकरस्तद्दुर्भगनाम।

जिसके उदय से रूपादि गुणों से युक्त होकर भी अप्रीतिकर अवस्था होती है वह दुर्भग नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

रूपादिगुणोपेतोऽपि सन् यस्योदयादन्येषाम प्रीतिहेतुर्भवति तद्दुर्भग नाम।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपादि गुण युक्त होने पर भी जिसके उदय से दूसरों को अप्रीति स्वरूप लगता है वह दुर्लभ नामकर्म है। (त.वृ.भा.8/11)

यदुदयेन रूपलावण्य गुणसहितोऽपि दृष्टः श्रुतो वा परेषामप्रीतिजनको भवति तद्दुर्भगनाम।

जिसके उदय से रूप और लावण्य से सहित होने पर भी जीव दूसरों को अच्छा न लगे वह दुर्भगनाम कर्म है। (त.वृ. श्रु. 8/11)

सुस्वर नामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण कण्णसुहो सरो होदि तं सुस्वरणामं।

जिस कर्म के उदय से कानों को प्यारा लगने वाला स्वर होता है, वह सुस्वर नामकर्म है। (ध 13/366)

सुस्सरो णाम महुरो णाओ।

सुस्वर नाम मधुर नाद (शब्द) का है। (ध 6/65)

सुस्वरनाम श्रवणरमणीयस्वरं करोति।

सुस्वर नाम कर्म कर्णप्रिय स्वर करता है। (क.प्र./37)

यन्निमित्तं मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं तत्सुस्वरनाम।

जिसके निमित्त से मनोज्ञ स्वर की रचना होती है वह सुस्वर नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

दुःस्वर नामकर्म

अमहुरो सरो दुस्सरो, जहा गद्दहुट्ट-सियालादीणं। जस्स कम्मस्स उदएण जीवे दुस्सरो होदि तं कम्मं दुस्सरं णाम।

अमधुर स्वर को दुःस्वर कहते हैं जैसे गधा, ऊंट और सियाल आदि जीवों का स्वर दुःस्वर होता है। जिस कर्म के उदय से जीव के बुरा स्वर उत्पन्न होता है, वह दुःस्वर नामकर्म कहलाता है। (ध 6/65)

दुस्स्वरं नाम श्रवणदुस्सहं स्वरं करोति।

दुःस्वर नामकर्म कानों को दुःसह स्वर करता है। (क.प्र. /37)

यदुदयेन खरमार्जारकाकादिर्स्वरवत् कर्णशूलप्रायः स्वर उत्पद्यते तद्-दुःस्वरनाम।

जिसके उदय से गधे, बिल्ली कौआ आदि के स्वर की तरह कर्कश स्वर हो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह दुःस्वरनामकर्म है। (त.वृ. श्रु. 8/11)

आदेय नामकर्म

आदेयता ग्रहणीयता बहुमान्यता इत्यर्थः। जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स आदयेत्तमुप्पज्जदि तं कम्ममादेयं णाम।

आदेयता, ग्रहणीयता और बहुमान्यता, ये तीनों शब्द एक अर्थवाले हैं। जिस कर्म के उदय से जीव के आदेयता उत्पन्न होती है, वह आदेयनामकर्म कहलाता है । (ध 6/65)

आदेयनाम परेर्मान्यतां करोति।

आदेय नाम कर्म दूसरों के द्वारा मान्यता करता है। (क.प्र. 38)

प्रभोपेतशरीरकारणमादेयनाम।

प्रभायुक्त शरीर का कारण आदेय नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

यदुदयादादेयवाच्यं तदादेयं विपरीतमनादेयमिति।

जाके उदयतैं आदेय वाच्य (मान्य वचन वाला) होय सो आदेय, अनादेय वाच्य होय सो अनादेय है। (मू. 12/196)

अनादेय नामकर्म

तव्विवरीय भावणिव्वित्तयकम्ममणादेयं णाम।

आदेयता से विपरीत भाव (अनादरणीयता) को उत्पन्न करने वाला अनादेय नामकर्म है। (ध 6/65)

जस्स कम्मस्सुदएण सोभणाणुट्ठाणो वि जीवो ण गउरविज्जदि तमणादेज्जं णाम।

जिस कर्म के उदय से अच्छा कार्य करने पर भी जीव गौरव को प्राप्त नहीं होता है, वह अनादेय नामकर्म है। (ध 13/366)

अनादेयनामामान्यतां करोति।

अनादेय नाम कर्म अमान्यता करता है। (क.प्र.38)

निष्प्रभशरीरकारण मनादेयनाम।

निष्प्रभ शरीर का कारण अनादेय नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

यशः कीर्ति नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण संताणमसंताणं वा गुणाणमुब्भावणं लोगेहि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कीरदि, तस्स कम्मस्स जसकित्तिसण्णा।

जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान गुणों का उद्‌भावन लोगों के द्वारा किया जाता है, उस कर्म की 'यशः कीर्ति ' यह संज्ञा है। (ध 6/66)

जस्स कम्मस्सुदएण जसो कित्तिज्जइ जणवयेण तं जसगित्ति-णामं।

जिसके के उदय से जनसमूह के द्वारा यश गाया जाता है अर्थात् कहा जाता है, वह यशः कीर्ति नामकर्म है। (ध 13/366)

यशस्कीर्तिनाम गुणकीर्तनं करोति।

यशस्कीर्ति नामकर्म गुणकीर्तन करता है। (क.प्र. 38)

पुण्यगुणख्यापनकारणं यशः कीर्तिनाम।

पुण्यगुणों की प्रसिद्धि का कारण यशः कीर्ति नामकर्म है। (स.सि.8/11)

पुण्यगुणानांख्यापनं यस्योदयाद्‌भवति तद्यशस्कीर्तिनाम प्रत्येतव्यम्।

जिसके उदय से पुण्य गुणों की प्रसिद्धि होवे वह यशस्कीर्ति नाम कर्म है। (त.वृ.भा.8/11)

बहुरि जाके उदयतै पुण्यरूप गुणनि की विख्यातता प्रकट होइ सो यशः कीर्तिनाम है। (अ.प्र. 8/11)

अयशः कीर्ति नामकर्म

जस्स कम्मस्सोदएण संताणमसंताणं वा अवगुणाणं उब्भावणं जणेण कीरदे, तस्स कम्मस्स अजसयकित्तिसण्णा।

जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान अवगुणों का उद्भावन लोक द्वारा किया जाता है, उस कर्म की 'अयशः कीर्ति' यह संज्ञा है। (ध 6/66)

जस्स कम्मस्सुदएण अजसो कित्तिज्जइ लोएण तमजसगित्तिणामं।

जिस कर्म के उदय से लोग अपयश कहते हैं वह अयशः कीर्ति नामकर्म है। (ध 13/366)

अयशस्कीर्तिनाम दोषकीर्तनं करोति।

अयशस्कीर्ति दोषकीर्तन (बदनामी) करता है। (क.प्र. 430)

यशकीर्ति नामकर्म के विपरीत फल वाला अयशस्कीर्ति नाम कर्म है। (स.सि. 8/11)

पापगुणख्यापनकारणमयशस्कीर्तिनाम वेदितव्यम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाप गुणके ख्यापन कथन में जो कारण पड़ता है वह अयशस्कीर्ति नामकर्म है। (त.वृ.भा.8/11)

बहुरि पापरूप गुणनिकी विख्यातता जाके उदयतै होय सो अयशस्कीर्तिमान है। (अ.प्र. 8/11)

निर्माण नामकर्म

जस्स कम्मस्सुदएण अंग पच्चंगाणं ठाणं पमाणं च जादिवसेण णियमिज्जदि तं णिमिण णामं।

जिस कर्म के उदय से अंग प्रत्यंग का स्थान और प्रमाण अपनी अपनी जाति के अनुसार नियमित किया जाता है, वह निर्माण नामकर्म है। (ध.13/366)

नियत मानं निमानं। तं दुविहं प्रमाणणिमिणं संठाणणिमिणमिदि। जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं दो वि णिमिणाणि होंति, तस्स कम्मस्स णिमिणमिदि सण्णा।

नियत मान को निर्माण कहते हैं। वह दो प्रकार का है - प्रमाणनिर्माण और संस्थाननिर्माण। जिस कर्म के उदय से जीवों के दोनों ही प्रकार के निर्माण होते हैं, उस कर्म की 'निर्माण' यह संज्ञा है। (ध 6/66)

निर्माणनाम शरीरवत् स्वस्वस्थानेषु स्वस्थितानुप्राञ्जलित्वं करोति।

निर्माण नामकर्म शरीर के अनुसार स्व-स्व स्थानों में शरीरावयवों का उचित निर्माण करता है। (क.प्र./38)

यन्निमित्तात्परिनिष्पत्तिस्तन्निर्माणम्।

जिसके निमित्त से शरीर के अंगोपांगों की रचना होती है वह निर्माण नामकर्म है। (स.सि.8/11)

नेत्रादिक जिस ठिकाने चाहिए तिस ही ठिकाने निपजावै ,सो स्थान निर्माण है। जो नेत्रादिक का प्रमाण चाहिये तितने ही निपजावै,सो प्रमाण निर्माण है।

विशेष - यदि प्रमाणनिर्माणनामकर्म न हो, तो जंघा, बाहु ,सिर और नासिका आदिका विस्तार और आयाम लोकके अन्ततक फैलनेवाले हो जावेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि उस प्रकारसे पाया नहीं जाता है।

यदि संस्थाननिर्माण नामकर्म न हो, तो अंग, उपांग और प्रत्यंग संकर और व्यतिकर स्वरूप हो जावेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। इसलिए कान, आँख, नाक आदि अंगोंका अपनी जातिके अनुरूप अपने-अपने स्थानपर जो नियामक कर्म है, वह संस्थाननिर्माणनामकर्म कहलाता है। (ध. 6/66)

तीर्थकर नामकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स तिलोग पूजा होदि तं तित्थयरं -णाम।

जिस कर्म के उदय से जीव की त्रिलोक में पूजा होती है, वह तीर्थकर नामकर्म है। (ध 6/67)

जस्स कम्मस्सुदएण जीवो पंचमहाकल्लाणाणि पाविदूण तित्थं दुवालसंगं कुणदि तं तित्थयरणामं।

जिस कर्म के उदय से जीव पांच महाकल्याणकों को प्राप्त करके तीर्थ अर्थात् बारह अंगों की रचना करता है, वह तीर्थकर नामकर्म है।

(ध 13/366)

तीर्थंकरत्वं नाम पञ्चकल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्यसमवशरणादिबहुविधौचित्यविभूतिसंयुक्तार्हन्त्यलक्ष्मीं करोति।

तीर्थंकर नामकर्म पंचकल्याणक, चौंतीस अतिशय, आठ प्रतिहार्य तथा समवशरण आदि अनेक प्रकार की उचित विभूति से युक्त आर्हन्त्य लक्ष्मी को करता है। (क.प्र./39)

आर्हन्त्यकारणं तीर्थकरत्वनाम।

आर्हन्त्य का कारण तीर्थकर नामकर्म है। (स.सि. 8/11)

पाप (अशुभ नामकर्म) के बन्ध योग्य परिणाम-

अशुभः पापस्य। योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।

अशुभ योग पापास्रवका कारण है। योगवक्रता और विसंवाद ये अशुभ नामकर्म के आस्रव हैं। (त.सू.6/3)

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु।
परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि ॥

बहु प्रमादवाली चर्या, कलुषता, विषयों के प्रति लोलुपता, परको परिताप करना तथा पर का अपवाद करना- वह पापका आस्रव करता है।

(पं.का. /193)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्णस्सासवभूदा अणुकंपा सुद्ध एव उवओगो।
विवरीदं पावस्स दु आसवहेउं वियाणादि ॥

शुभसे विपरीत निर्दयपना, मिथ्याज्ञानदर्शनरूप उपयोग पापकर्म के आस्रव के कारण हैं। (मू./235)

मिथ्यादर्शन-पिशुनताऽस्थिरचित्तस्वभावताकूटमानतुलाकरण सुवर्णमणिरत्नाद्यनुकृतिकुटिलसाक्षित्वाऽङ्गोपाङ्गच्यावनवर्णगन्धरस-स्पर्शान्यथाभावनयन्त्रपञ्जरक्रियाद्रव्यान्तरविषयसंबन्धनिकृतिभूयिष्ठता-परनिन्दात्मप्रशंसाऽनृतवचन परद्रव्यादानमहारम्भपरिग्रहउज्जवलवेषरूपमद - परूषासभ्यप्रलाप आक्रोशमौखर्य सौभाग्योपयोगवशीकरणप्रयोग-परकुतूहलोत्पादानाऽलङ्कारादर चैत्यप्रदेशगन्धमाल्यधूपादिमोषण विलम्बनोपहास-इष्टिकापाकदवाग्निप्रयोग प्रतिमायतनप्रतिश्रयारामोद्यानविनाशनतीव्रक्रोधमानमायालोभपापकर्मोपजीवनादिलक्षणः। स एष सर्वोऽशुभस्य नाम्नआस्रवः।

मिथ्यादर्शन, पिशुनता, अस्थिरचित्तस्वभावता, झूठे बाट तराजू आदि रखना, कृत्रिम सुवर्ण मणि रत्न आदि बनाना, झूठी गवाही, अंग उपांगों का छेदन, वर्ण गन्ध रस और स्पर्श का विपरीतपना, यन्त्र पिंजरा आदि बनाना, माया बाहुल्य, परनिन्दा, आत्म प्रशंसा, मिथ्याभाषण, पर द्रव्यहरण, महारम्भ, महापरिग्रह, शौकीन वेष, रूपका घमण्ड, कठोर असभ्य भाषण, गाली बकना, व्यर्थ बकवास करना, वशीकरण प्रयोग, सौभाग्योपयोग, दूसरे में कौतूहल उत्पन्न करना अच्छे-अच्छे आभूषणों में रुचि, मंदिर के गन्धमाल्य या धूपादिका चुराना, लम्बी हसी, ईंटों का भट्टा लगाना, वन में दावाग्नि जलवाना, प्रतिमायतन विनाश, आश्रय-विनाश, आराम-उद्यान विनाश, तीव्र क्रोध, मान, माया व लोभ और पापकर्म जीविका आदि भी अशुभ नाम के आस्रव के कारण हैं। (रा.वा. 6/22)

पुण्य (शुभ नामकर्म) के बन्ध यओग्य परिणाम

तद्विपरीतं शुभस्य। (त.सू. 6/23)

कायवाङ्मनसामृजुत्वमविसंवादनं च तद्विपरीतम्। 'च' शब्देन समुच्चितस्य च विपरीते ग्राह्यम्। धार्मिकदर्शनसंघ्रमसद्भावोपनयन संसरणभीरुताप्रमादवर्जनादिः। तदेतच्छुभनामकर्मास्रवकारणं वेदितव्यम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काय, वचन और मनकी सरलता तथा अविसंवाद ये उस (अशुभ) से विपरीत हैं। उसी प्रकार पूर्व सूत्र की व्याख्या करते हुए च शब्द से जिनका समुच्चय किया गया है, उनके विपरीत आस्रवों का ग्रहण करना चाहिए। जैसे - धार्मिक पुरुषों व स्थानों का दर्शन करना, आदर सत्कार करना, सद्भाव रखना, उपनयन, संसार से डरना, और प्रमाद का त्याग करना आदि। ये सब शुभ नामकर्म के आस्रव के कारण हैं। (स.सि. 6/23)

गोत्रकर्म

गमयत्युच्च नीच कुलमिति गोत्रम् ।

जो उच्च और नीच कुल को ले जाता है, वह गोत्रकर्म है। (ध 6/13)

उच्चैर्नीचैश्च गूयते शब्द्यत इति वा गोत्रम्।

जिसके द्वारा जीव उच्च नीच गूयते अर्थात् कहा जाता है वह गोत्रकर्म है। (स.सि.8/4)

संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।

संतानक्रम से चला आया जो आचरण उसकी गोत्र संज्ञा है। (गो.क.मू/13)

गुरु-लघुभाजनकारककुम्भकारवदुच्चनीचगोत्रकरणता।

छोटे-बड़े घट आदि को बनाने वाले कुंभकार की भांति उच्च तथा नीच कुल का करना गोत्रकर्म की प्रकृति है। (द्र.सं./टी/33/93)

गोत्रकर्म के भेद

गोदस्य कम्मस्स दुवे पयडीओ, उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेव।

गोत्रकर्म की दो प्रकृतियां हैं उच्चगोत्र और नीच गोत्र (ध 6/77)

उच्च गोत्रकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण उच्चागोदं होदि तमुच्चागोदं।

जिस कर्म के उदय से जीवों के उच्चगोत्र होता है, वह उच्चगोत्र कर्म है। (ध 6/77)

दीक्षा योग्यसाध्वाचाराणां साध्वाचारैः, कृतसम्बन्धानां आर्यप्रत्ययाभिधान व्यवहारनिबंधनानां पुरुषाणां सन्तानः उच्चैर्गोत्रं तत्रोत्पत्तिहेतुकर्माप्युचैर्गोत्रम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनका दीक्षा योग्य साधु आचार है, साधु आचारवालों के साथ जिन्होंने सम्बन्ध स्थापित किया है तथा जो 'आर्य' इस प्रकार के ज्ञान और वचन व्यवहार के निमित्त हैं, उन पुरुषों की परम्परा को उच्चगोत्र कहा जाता है। तथा उनमें उत्पत्ति का कारण कर्म भी उच्चगोत्र है। (ध 13/389)

तत्र महाव्रताचरणयोग्योत्तमकुलकारणमुच्चैर्गोत्रम्।

महाव्रतों के आचरण योग्य उत्तम कुलका कारण उच्च गोत्र कर्म कहलाता है। (क.प्र./38)

यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम्।

जिसके उदय से लोकपूजित कुलों में जन्म होता है वह उच्चगोत्र है।

(स.सि.8/12)

लोकपूजितेषु कुलेषु प्रथितमहात्म्येषु इक्ष्वाकूग्रकुरुहरिज्ञातिप्रभृतिषु जन्म यस्योदयोद्भवति तदुच्चैर्गोत्रमवसेयम्।

जिसके उदय से महत्वशाली अर्थात् इक्ष्वाकु, उग्र, कुरु, हरि और ज्ञाति आदि वंशों में जन्म हो वह उच्चगोत्र है। (रा.वा.8/12)

नीच गोत्रकर्म

जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं णीचगोदं होदि तं णीचगोदं णाम।

जिस कर्म के उदय से जीवों के नीच गोत्र होता है, उसे नीच गोत्र कर्म कहते हैं। (ध 6/78)

यदुदयाद्गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम्।

जिसके उदय से गर्हित कुलो में जन्म होता है वह नीचगोत्र है।

(स.सि 8/12)

गर्हितेषु दरिद्राप्रतिज्ञातदुःखाकुलेषु यत्कृतं प्राणिनां जन्म तन्नीचैर्गोत्रं प्रत्येतव्यम्।

जिसके उदय से निन्द्य अर्थात् दरिद्र अप्रसिद्ध और दुःखाकुल कुलों में जन्म हो वह नीचगोत्र है। (रा.वा. 8/12)

बहुरि जाके उदयतै निंद्य तथा दरिद्रसहित अप्रसिद्ध दुखः करि आकुल कुलमै जन्म सो नीचगोत्रकर्म है। (अ.प्र. 8/9)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदुदयेन निन्दिते दरिद्रे भ्रष्टे इत्यादिकुले जीवस्य जन्म भवति तन्नीचैर्गोत्रम्।

जिसके उदय से लोकनिन्द्य, दरिद्र, भ्रष्ट आदि कुल में जीव का जन्म हो उसे नीच गोत्र कहते हैं। (त.वृ. श्रु. 8/12)

उच्च नीच गोत्रके बन्धयोग्य परिणाम

कुलरूवाणाबलसुदलाभिस्सरयत्थमदितवादीहिं।
अप्पाणमुण्णमें तो नीचागोदं कुणदि कम्मं ॥
माया करेदि णीचगोदं ,.....।

कुल, रूप, आज्ञा, शरीरबल, शास्त्रज्ञान, लाभ, ऐश्वर्य, तप और अन्यपदार्थों से अपने को ऊंचा समझने वाला मनुष्य नीचगोत्र का बन्ध कर लेता है। माया से नीच गोत्र की प्राप्ति होती है। (भ.आ. /1375,1386)

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणो च्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य। (त.सू. 6/26)

कः पुनरसौ विपर्ययः। आत्मनिन्दा, परप्रशंसा, सद्गुणोद्भावनमसद्गुणोच्छादनं च। गुणोत्कृष्टेषु विनयेनावनतिर्नीचैर्वृत्तिः। विज्ञाननादिभिरुत्कृष्टस्यापि सतस्तत्कृतमदविरहोऽनहंकारतानुत्सेकः। तान्येतान्युत्तरस्योच्चैर्गोत्रस्यास्रवकारणानि भवन्ति।

परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, दूसरों के होते हुए गुणों को भी ढक देना और अपने नहीं होने वाले गुणों को भी प्रगट करना ये नीचगोत्र के आस्रव के कारण हैं। उनका विपर्यय अर्थात् आत्मनिन्दा पर प्रशंसा, अपने होते हुए भी गुणों को ढकना और दूसरे के नहीं होने वाले भी गुणों को प्रगट करना, उत्कृष्ट गुणवालों के प्रति नम्रवृत्ति, और ज्ञानादिमें श्रेष्ठ होते हुए भी उसका अभिमान न करना, ये उच्चगोत्र के आस्रव के कारण हैं। (स.सि. 6/26)

जातिकुलबलरूपश्रुताज्ञैश्वर्यतपोमदपरावज्ञानोत्प्रहसन-परपरिवादशीलता धार्मिकजननिन्दात्मोत्कर्षाऽन्ययशोविलोपाऽसत्कीर्त्युत्पादन-गुरुपरिभव- तदुद्धट्टन- दोषख्यापनंविहेडन - स्थानावमान-भर्त्सनगुणावसादन-अञ्जलिस्तुत्यभिवादनाभ्युत्थानाऽकरण तीर्थकराधिक्षेपादिः।

जाति, बल, कुल, रूप, श्रुत, आज्ञा, ऐश्वर्य और तपका मद करना, परकी अवज्ञा, दूसरे की हँसी करना, परनिन्दाका स्वभाव, धार्मिकजन परिहास, आत्मोत्कर्ष, परयशका विलोप, मिथ्याकीर्ति अर्जन करना, गुरुजनों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिभव, तिरस्कार, दोषख्यापन, विहेडन, स्थानावमान भर्त्सन, और गुणावसादन करना, तथा अंजलिस्तुति - अभिवादन-अभ्युत्थान आदि न करना, तीर्थंकरों पर आक्षेप करना आदि नीचगोत्र के आस्रव के कारण हैं।

(रा.वा 6 /25)

जातिकुलबलरूपवीर्यपरिज्ञानैश्वर्यतपोविशेषवतः आत्मोत्कर्षाऽप्रणिधानं परावरज्ञानौद्धत्यनिन्दासूयोपहासपरपरिवादननिवृत्तिः विनिहतमानता धर्म्यजनपूजाभ्युत्थानाञ्जलिप्रणतिवन्दना ऐदंयुगीनान्यपुरुषदुर्लभ-गुणस्याप्यनुत्सिक्तता, अहंकारात्यये नीचैर्वृत्तिता भस्मावृतस्येव हुत-भुजः स्वमाहात्म्याप्रकाशनं धर्मसाधनेषु परमसंभ्रम इत्यादि।

जाति, कुल, बल, रूप, वीर्य, ज्ञान, ऐश्वर्य और तप आदि की विशेषता होने पर भी अपने में बड़प्पन का भाव नहीं आने देना, परका तिरस्कार न करना, अनौद्धत्य, असूया, उपहास, बदनामी आदि न करना, मान नहीं करना, साधर्मी व्यक्तियों का सम्मान, इन्हें अभ्युत्थान अंजलि, नमस्कार आदि करना, इस युग में अन्य जनों में न पाये जाने वाले ज्ञान आदि गुणों के होने पर भी उनका रंचमात्र अहंकार नहीं करना, निरहंकार नम्रवृत्ति, भस्मसे ढंकी हुई अग्नि की तरह अपने माहात्म्यका ढिंढोरा नहीं पीटना, और धर्मसाधनों में अत्यन्त आदरबुद्धि आदि भी उच्चगोत्र के आस्रव के कारण हैं। (रा.वा. 6/26)

अरहंतादिसु भत्ती सुत्तरुची पढणुमाणगुणपेही।
बंधदि उच्चागोदं विवरीओ बंधदे इदरं ॥

अर्हन्तादि में भक्ति, सूत्ररुचि, अध्ययन, अर्थविचार तथा विनय आदि, गुणों को धारण करने वाला उच्चगोत्र कर्म को बाँधता है और इससे विपरीत नीच गोत्र को बाँधता है। (गो.क.मू. /809)

अंतराय कर्म

अंतरमेति गच्छति द्वयोः इत्यन्तरायः

जो दो पदार्थों के अंतर अर्थात् मध्य में आता है, वह अंतराय कर्म है।

(ध 6/13)

दानादिविघ्नं कर्तुमन्तरं दातृपात्रादीनां मध्यमेतीत्यन्तरायो भाण्डा-रिकवत्।

भण्डारीकी तरह जो दाता और पात्र आदि के बीच में आकर आत्माके दान आदि में विघ्न डालता है, वह अन्तराय कर्म है। (क.प्र. /4)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दातृदेयादीनामन्तरं मध्यमेतीत्यन्तरायः।

जो दाता और देय आदि का अन्तर करता है अर्थात् बीच में आता है वह अन्तराय कर्म है। (स.सि.8/4)

विघ्नकरणमन्तरायस्य॥

विघ्नकरना अन्तराय का कार्य है। (त.सू./6/27)

दातृपात्रयोर्देयादेययोश्च अन्तरं मध्यम एति गच्छतीत्यन्तरायः

जो पात्र और दाता के वा दाता और देय आदि के बीच में आता है, अन्तर कराता है , विघ्न डालता **है, वह** अन्तराय कर्म है। (त.वृ. श्रु. 8/4)

अंतराय कर्म के भेद

अंतराइयस्य कम्मस्य पंच पयडीओ, दाणंतराइयं लाहंतराइयं, भोगंत-राइयं परिभोगंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि।

अंतराय कर्म की पाँच प्रकृतियां हैं - दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय। (ध 6/78)

दानान्तराय कर्म

जस्स कम्मस्स उदएण देंतस्स विग्घं होदि तं दाणंतराइयं।

जिस कर्म के उदय से दान देते हुए जीव के विघ्न होता है, वह दानान्तराय कर्म है। (ध 6/78)

लाभान्तराय कर्म

जस्स कम्मस्स उदएण लाहस्स विग्घं होदि तल्लाहंतराइयं।

जिस कर्म के उदय से लाभ में विघ्न होता है, वह लाभान्तराय कर्म है। (ध 6/78)

भोगान्तराय कर्म

जस्स कम्मस्स उदएण भोगस्स विग्घं होदि तं भोगंतराइयं।

जिस कर्म के उदय से भोग में विघ्न होता है, वह भोगान्तराय कर्म है। (ध 6/78)

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगस्तस्य विघ्नहेतुर्भोगान्तरायम्।

जो एक बार भोग कर छोड़ दिया जाता है उसे भोग कहते हैं। भोगों के अन्तराय का कारण भोगान्तराय है। (क.प्र./40)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिभोगान्तराय कर्म

जस्स कम्मस्स उदएण परिभोगस्स विग्घं होदि तं परिभोगंतराइयं।
जिस कर्म के उदय से परिभोग में विघ्न होता है, वह परिभोगान्तराय कर्म है। (ध 6/78)

भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्य उपभोगस्तस्य विघ्नहेतुरुप भोगान्तरायम्।
एक बार भोगकर पुनः भोगने योग्य उपभोग कहलाता है, उसके विघ्नका कारण उपभोगान्तराय है। (क.प्र./41)

वीर्यान्तराय कर्म

जस्स क.म्मस्स उदएण वीरियस्स विग्घं होदि तं वीरियंतराइयं णाम।
जिस कर्म के उदय से वीर्य में विघ्न होता है, वह वीर्यान्तराय कर्म है। (ध. 6/78)

वीर्यशक्तिः सामर्थ्यं तस्य विघ्नहेतुर्वीर्यान्तरायम्।
शक्ति या सामर्थ्य **वीर्य है**, उसके विघ्न का कारण वीर्यान्तराय है। **(क.प्र./41)**

बहुरि जाके उदय तैं अपनी शक्ति प्रकट करने को चाहैं, परन्तु **शक्ति प्रकट** न होइ, सो वीर्यांतराय है। (गो.का. स.च/33)

दानादि अंतराय कर्मों के लक्षण-

रत्नत्रयवद्भ्यः स्ववित्तपरित्यागो दानं रत्नत्रयसाधन दित्सा वा। अभिलषितार्थप्राप्तिर्लाभः। सकृद्भुज्यत् इति भोगः गन्ध- ताम्बूल पुष्पाहारादिः। परित्यज्य पुनर्भुज्यत इति परिभोगः स्त्री-वस्त्राभरणादिः तत्रभरणानि स्त्रीणां चतुर्दश। तद्यथा तिरीट - मुकुट चूडामणि - हारार्द्धहार - कटिकंठसूत्र मुक्तावलि - कटकांगदां-गुलीयक-कुंडलग्रैवेय-प्रालंबाः। पुरुषस्य खड्ग- क्षुरिकाभ्यां सह षोडश। वीर्यं शक्तिरित्यर्थः। एतेषां विघ्नकृदन्तरायः।
रत्नत्रय से युक्त जीवों के लिये अपने वित्त का त्याग करने या रत्नत्रय के योग्य साधनों के प्रदान करने की इच्छा का नाम दान है। अभिलषित अर्थ की प्राप्ति होना लाभ है। जो एक बार भोगा जाय वह भोग है। यथा -गन्ध, पान, पुष्प और आहार आदि छोड़कर जो पुनः भोगा जाता है वह उपभोग है। यथा - स्त्री वस्त्र और आभरण आदि। इनमें स्त्रियों के आभरण चौदह होते हैं। यथा - तिरीट, मुकुट, चूडामणि, हार, अर्धहार, कटिसूत्र, कण्ठसूत्र, मुक्तावलि, कटक, अंगद, अंगूठी, कुण्डल, ग्रेवेय और प्रालम्ब। पुरुष के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खड्ग, और छुरी के साथ वे सोलह होते हैं । वीर्यका अर्थ शक्ति है इनकी प्राप्ति में विघ्न करनेवाला अन्तराय कर्म है। (ध 13/389-390)

यदुदयाद्दातुकामोऽपि न प्रयच्छति, लब्धुकामोऽपि न लभते, भोक्तुमिच्छन्नपि न भुङ्क्ते उपभोक्तुमभिवाञ्छन्नपिनोपभुङ्क्ते, उत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते।

जिसके उदय से देने की इच्छा करता हुआ भी नहीं देता, प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ भी प्राप्त नहीं कर पाता है, भोगने की इच्छा करता हुआ भी नहीं भोग सकता है उपभोग करने की इच्छा करता हुआ भी उपभोग नहीं कर सकता है और उत्साहित होने की इच्छा रखता हुआ भी उत्साहित नहीं होता है। (स.सि.8/13)

अन्तराय कर्म के बन्ध योग्य परिणाम

विघ्नकरणमन्तरायस्य ।

दानादि में विघ्न डालना अन्तराय कर्म का आस्रव है। (त.सू. 6/26)

ज्ञानप्रतिषेधसत्कारोपघात-दान लाभ भोगोपभोगवीर्यस्नानानुलेपनगन्धमाल्याच्छादनविभूषण-शयनासनभक्ष्यभोज्यपेयलेह्यपरिभोगविघ्नकरणविभवसमृद्धिविस्मयद्रव्यापरित्यागद्रव्यासंप्रयोगसमर्थनाप्रमादाऽवर्णवाद-देवता-निवेद्यानिवेद्यग्रहण-निरवद्योपकरणपरित्याग-परवीर्यापहरण-धर्मव्यवच्छेदनकरण-कुशलाचरणतपस्विगुरुचैत्यपूजाव्याघात-प्रव्रजितकृपणदीनानाथवस्त्रपात्रप्रतिश्रयप्रतिषेधक्रियापरनिरोधबन्धनगुह्याङ्गछेदनकर्णनासिककौष्ठकर्तनप्राणिवधादिः।

ज्ञानप्रतिषेध, सत्कारोपघात, दान, लाभ भोग, उपभोग और वीर्य, स्नान, अनुलेपन, गन्ध, माल्य, आच्छादन, भूषण, शयन, आसन, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और परिभोग आदि में विघ्न करना, विभव समृद्धि में विस्मय करना, द्रव्य का त्याग न करना, द्रव्य के उपयोग के समर्थन में प्रमाद करना, अवर्णवाद करना, देवता के लिए निवेदित या अनिवेदित द्रव्य का ग्रहण करना, निर्दोष उपकरणों का त्याग, दूसरे की शक्ति का अपहरण, धर्म व्यवच्छेद करना, कुशल चारित्रवाले तपस्वी, गुरु तथा चैत्यकी पूजा में व्याघात करना, दीक्षित, कृपण, दीन, अनाथ को दिये जाने वाले वस्त्र, पात्र, आश्रय आदि में विघ्न करना, पर निरोध, बन्धन, गुह्य अंगच्छेद, नाक, ओठ आदि का काट देना, प्राणिबध आदि अन्तराय कर्म के आस्रव के कारण हैं। (रा.वा. 6/27)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org